मंत्र सिद्धि

(रहस्य)

गोविन्द शास्त्री



साधना पॉकेट बुक्स

प्रकाशक : साधना पॉकेट बुक्स
३६-यू० ए०, बँग्लो रोड,
दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २५१६७१५
२६१४१६१

साधना पॉकेट बुक्स में प्रकाशित
लेखक की अन्य पुस्तक
मंत्र और ज्योतिष
पढ़िये
मूल्य : १२.०० रुपये

मूल्य : 12.00

संस्करण : १९८८

मुद्रक : चोपड़ा प्रिंटर्स मोहन पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

MANTRA SIDDHI—Govind Shastri Rs. 12.00

आत्म निवेदन

हम ऋणी हैं वेदव्यास के जिन्होंने पुराण और महाभारत जैसे परमपावन वाकृतीर्थ और ज्ञानमन्दिर सिरजे। इन प्राचीन मंत्रों रहस्यों की निधि को सुरक्षित रखने के लिए हमारे पूर्व पुरुष जागरूक नही रहते तो हम पश्चिम देशों की तरह परम्परा और इतिहास रहित एवं चिन्तन की दृष्टि से दरिद्र होकर तर्क के चौराहे पर चक्कर काटते रहते।

युगान्तरकारी गोरखनाथ के हम आभारी हैं जिन्होंने मंत्रों को जन सामान्य के उपयोगी बनाने का सत्प्रयास किया और श्रद्धा पक्ष को प्रमुखता प्रदान की। तांत्रिक के वे परम उपास्य और शाक्तों के शरण्य हैं।

विनम्र आग्रह करने के बावजूद भी कृपालु पाठक मेरे संबंध में भ्रान्त धारणा बनाये हुए है स्नेहातिशय व्यक्ति को निष्पक्ष निर्णय नही लेने देता। मैं आपका कृतज्ञ हू, आपका आशीर्वाद मेरे जीवन की सार्थकता है पर मुझ सरीखे अकिंचन को असाधारण समझने का भ्रम मुझे मार्गभ्रष्ट और दर्पभ्रष्ट कर सकता है तथा इससे आपको कोई लाभ नही। मुझ में इतना सामर्थ्य नही कि उसके इस दीप्त स्वरूप को सह सकूं इसलिए उसके शुद्ध सारस्वत का ही साधक उपासक हू।

आगे के पृष्ठो में जो कुछ भी अच्छा लगने वाला या सिद्धिप्रद अंश है वह सदाशिव वेदव्यास अथवा गोरखनाथ का प्रसाद है और जो असुन्दर हैं वह मेरा। संभव है आप लोगों का स्नेह पाकर मैं इतरा गया होऊँ, दर्प विष का प्रभाव मेरे विचारों मे व्याप गया हो, यदि किसी स्थान पर आप को ऐसा आभास हो तो उसकी उपेक्षा और मुझे क्षमा कर दें।

एक बार फिर याद दिला दू—इन प्रयोगों के संबंध में मैं पूर्ण आश्वस्त हूं। दीर्घकालीन उपासना, अविचल आस्था और सतत साधना करने वाले के लिये ये प्रयोग सफल रहेंगे तिस पर यदि गुरु कृपा का अवलब हो तो कहना ही क्या? इस पुस्तक में वर्णित प्रयोगों के संबंध मे कुछ पूछना आवश्यक लगे तो सम्पर्क किया जा सकता है किन्तु केवल पत्र सम्पर्क।

गोविन्द शास्त्री

प्रकाशक : साधना पॉकेट बुक्स
३६-यू० ए०, बैंग्लो रोड,
दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २५१६७१५.
२६१४१६१

साधना पॉकेट बुक्स में प्रकाशित
लेखक की अन्य पुस्तक
मंत्र और ज्योतिष
पढ़िये
मूल्य : १२.०० रुपये

मूल्य : 12.00

संस्करण : १६८८

मुद्रक : चोपड़ा प्रिंटर्स मोहन पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

'ANTRA SIDDHI—Govind Shastri Rs. 12.00

आत्म निवेदन

हम ऋणी हैं वेदव्यास के जिन्होंने पुराण और महाभारत जैसे परम-पावन वाक्तीर्थ और ज्ञानमन्दिर सिरजे। इन प्राचीन मंत्रों रहस्यों की निधि को सुरक्षित रखने के लिए हमारे पूर्व पुरुष जागरूक नही रहते तो हम पश्चिम देशो की तरह परम्परा और इतिहास रहित एवं चिन्तन की दृष्टि से दरिद्र होकर तर्क के चौराहे पर चक्कर काटते रहते।

युगान्तरकारी गोरखनाथ के हम आभारी हैं जिन्होने मंत्रो को जन सामान्य के उपयोगी बनाने का सत्प्रयास किया और श्रद्धा पक्ष को प्रमुखता प्रदान की। तांत्रिक के वे परम उपास्य और शाक्तों के शरण्य हैं।

विनम्र आग्रह करने के बावजूद भी कृपालु पाठक मेरे संबंध में भ्रान्त धारणा बनाये हुए हैं स्नेहातिशय व्यक्ति को निष्पक्ष निर्णय नही लेने देता। मैं आपका कृतज्ञ हूं, आपका आशीर्वाद मेरे जीवन की सार्थकता है पर मुझ सरीखे अकिंचन को असाधारण समझने का भ्रम मुझे मार्गभ्रष्ट और दर्पभ्रष्ट कर सकता है तथा इससे आपको कोई लाभ नही। मुझ में इतना सामर्थ्य नही कि उसके इस दीप्त स्वरूप को सह सकूं इसलिए उसके शुद्ध सारस्वत का ही साधक उपासक हूं।

आगे के पृष्ठो में जो कुछ भी अच्छा लगने वाला या सिद्धिप्रद अंश है वह सदाशिव वेदव्यास अथवा गोरखनाथ का प्रसाद है और जो असुन्दर हैं वह मेरा। संभव है आप लोगो का स्नेह पाकर मैं इतरा गया होऊँ, दर्प विष का प्रभाव मेरे विचारो में व्याप गया हो, यदि किसी स्थान पर आप को ऐसा आभास हो तो उसकी उपेक्षा और मुझे क्षमा कर दें।

एक बार फिर याद दिला दूं—इन प्रयोगों के संबंध मे मैं पूर्ण आश्वस्त हूं। दीर्घकालीन उपासना, अविचल आस्था और सतत साधना करने वाले के लिये ये प्रयोग सफल रहेंगे तिस पर यदि गुरु कृपा का अवलंब हो तो कहना ही क्या? इस पुस्तक मे वर्णित प्रयोगों के संबंध मे कुछ पूछना आवश्यक लगे तो सम्पर्क किया जा सकता है किन्तु टिकट लगे पत्र सम्पर्क ।

गोविन्द शास्त्री

विषय-सूची

१. सापेक्षता	६
२. तनाव और अन्तर्बल	१७
३. हमें सिद्धि क्यों नहीं मिलती ?	२७
४. प्रणव मन्त्र	३७
५. गायत्री मन्त्र	४१
६. कर्ण पिशाचिनी	४८
७. एक कर्ण पिशाचिनी साधक का अनुभव	५२
८. गुरु	५५
९. मन्त्र और ज्योतिष	६३
१०. मन्त्रपुरुष	६७
११. मन्त्र का देहगत प्रभाव	७६
१२. पुरश्चरण का आशय	८४
१३. मानसिक जप	८९
१४. सामान्य सावधानियां	१०३
१५. साधना की विधि	१०६
१६. वशीकरण-विश्लेषण	१११
१७. विविध प्रयोग	१२२
१८. कुछ काम्य प्रयोग	१३१
१९. भैरव साधना	१४५
२०. प्रत्युपचार काट	१४७
२१. सन्तान प्राप्ति के उपाय	१५८
२२. पुत्रप्रद यन्त्र	१६६
२३. विवाह कारक प्रयोग	१६९

पृष्ठभूमि

स्नेहशील पाठक बंधु।

पहले प्रकाशित पुस्तकों में मैंने एक वादा किया था—आप लोगों का सहयोग करने का और एक विनम्र निवेदन भी किया था—"गुरु बनने की योग्यता मुझमें नही है, मैं किसी के लिए किसी भी प्रकार का अनुष्ठान नही कहता न मंत्रोपदेश ही करता हूं" मैंने अपना वादा निभाया प्रतिमास २ सौ से ३ सौ पत्रों का उत्तर निःशुल्क देता रहा, अब भी यथाशक्ति देता रहूंगा किन्तु आप लोगों ने मेरे निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया और मेरे जैसे सामान्य जन को आपने न जाने क्या समझ लिया ?

मैं सिद्ध नही हूं, चमत्कार नाम की कोई भी चीज मेरे पास नही है किन्तु भारत की मिट्टी का, जल का और वायु का मैं ऋणी हूं और परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूं कि जब भी मैं मनुष्य बनूं तो इसी धरती का। इस देश में पूर्ण पुरुष अवतार लेते हैं, इस देश में ऋषियों ने तपस्या की है, विश्वामित्र और भगीरथ जैसे प्रबल प्रयत्नवादी रहे हैं और मैं केवल जन्म लेने मात्र से ही इस देश की गौरवपूर्ण संस्कृति और वैभवपूर्ण इतिहास से जुड़ जाता हूं—यह क्या कम सौभाग्य की बात है ?

जब कभी इस गूढ और गहन विषय पर लिखने की सोचता हू तो रोमांच हो आता है और मेरे भीतर कोई दूसरा अस्तित्व आ बैठता है मैं नही जानता कैसा लिखा, कई बार मैं स्वयं यह मानने को तैय्यार नहीं होता कि यह मैंने ही लिखा है तो भी विश्वास करना पड़ता है क्योंकि लिखावट

मेरी है और किसी पुस्तक का रूपान्तर मैंने नही किया है।

कला का अवतरण जब होता है तो व्यक्ति अपने अस्तित्व को भू जाता है और ऐसे वक्त में जो कुछ लिखा जाता है वह मन की गहराइ से, विवेक से लिखा जाता है।

विस्तार मूलतत्त्वों की देन है तो, यह भी स्वाभाविक है कि य विस्तार उन तत्त्वो की संक्षिप्त दुनिया मे बीज और मूल रूप मे विद्यमा है और तत्त्वो के रहस्य को जान लेने पर बहिरंग पर नियंत्रण प्राप्त कि जा सकता है। मंत्र जप ऐसा ही करता है वह पत्थर और चूने से मका नही बनाता (क्योंकि यह स्थूल से स्थूल का समन्वय है) बल्कि पत्थर प्राण प्रतिष्ठा करता है। मारण मोहन जैसे कर्मों में मूलत तत्त्वों की औ प्रकारान्तर से गुणों की व्यवस्था एवं कार्य विधि को समझा और कार्यक्र बनाया जाता है। मंत्र किस तरह कार्य करते हैं—इस प्रश्न का उत्त सम्पूर्ण रूप से देना असंभव है। युक्तियों और अनुमानों से इसे समझा ज सकता है किन्तु इसका मर्म केवल आत्मदर्शन से समझा जा सकता है शब्द के वाह्य रूप में यह संसार है और आभ्यन्तर में एक विराट् सत्ता जो सारे संसार को अपने गर्भ मे समेटे हुए है—वही आप हैं, मैं हूं और शे लोक हैं। शब्द के विस्तार का (स्वर और व्यजन) संक्षेपण होते-होते ह ऐसे बिन्दु पर पहुंच जाते हैं जहां नाद है यही वाणी का मूल रूप है प्रकृि के विक्षोभ की व्यक्त स्थिति है, शिव और शिवा के मिथुन विलास क निर्दोष अभिव्यक्ति है। जिस तरह नृत्य मे विविध मुद्रायें बनती हैं उसं तरह जड़ और चेतन की अनन्त मुद्रायें अक्षरों और शब्दो और वाणी क रूप मे प्रकट होती जाती हैं। वामाचार के मैथुन में शिव शिवा की इन्हीं मुद्राओं, शब्द के मूल स्वरूप, से एकाकार हुआ जाता है। इस दृष्टि से जब व्यक्ति अपने स्व की सीमा के बंधनो को भूल कर प्रकृति से एक रूप होने लगता है तो भोग ही मोक्ष बन जाता है और जो परावा की शरण मे सर्वात्म भाव से समर्पित हो जाते हैं उनको यह स्थिति भी देर अवेर मिल ही जाती है।

मैंने मौलिक कुछ नहीं लिखा, लिख भी नही सकता क्योंकि आज तक नये के नाम पर जो कुछ कहा, लिखा या किया जाता है वह प्रकृति मे

विद्यमान है, हम उसे समझ जाते हैं, उसका रहस्य जान जाते हैं, हमारे पास नये के नाम पर केवल संयोजन और प्रस्तुतीकरण रहता है। जिन लोगों ने बहिर्मुखी दृष्टि से देखा है वे विज्ञानवादी बन गये हैं और जो अन्तर्मुखी दृष्टि से देखते हैं वे ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी या आत्मवादी बन जाते हैं बिन देखे जो लोग रहते हैं वे पशुभाव से बद्ध रहते हैं, बहि:करण (स्थल देह) के धर्म संस्कार, निद्रा, भय और मैथुन मे रमे रहते हैं।

प्रस्तुत सिरीज् को लिखने का मेरा लक्ष्य किसी प्रकार का सम्प्रदाय बनाना और एक हजूम बना कर शोभा यात्रा निकालना नही है प्रत्युत एक दर्शन से, एक दृष्टिकोण से, एक सत्य से परिचित कराना है समुदायवाद के प्रति मेरी आस्था नही है, कोई भी आत्मवादी और सत्यान्वेषी समुदाय नही बनाता क्योंकि यह मार्ग इतना संकीर्ण है कि इस पर अकेला एक ही व्यक्ति चल सकता है।

मैं समझता हू कि इस पुस्तक को या इस विषय के अन्य ग्रंथों को पढ़ते समय हम कल्पना के इन्द्रधनुषी महल में खो जाते हैं, हम सोचने लगते हैं यह सिद्धि प्राप्त हो जाए तो हम समाज मे सर्वमान्य और सर्वपूज्य व्यक्ति बन जायं, हमारा विरोध करने वाला जी नही सकता, हम सुख और उपभोग के स्वर्ग के सम्राट् बन जायं। इस प्रकार की कल्पना को तब और भी बल मिल जाता है जब सम्बन्धित मंत्र के जप करने की संख्या को पढ़ते हैं क्योंकि इतनी संख्या मे जप करना कोई कठिन कार्य नही रहता।

लालसा से प्रेरित होकर हम जप करते हैं सारे विधि-विधान का ध्यान रखते हैं किन्तु सिद्धि नही मिलती तब हम कह डालते हैं—यह सब बकवास है, झूठ है। ऐसे समय मुझे आडे हाथों लिया जाता है मेरे से जवाब तलब किया जाता है। मैं क्या जवाब दूं लोग यहां समझ लेते हैं कि मैं आत्म प्रतिष्ठा के लिए लिखता हूं या लोगों की स्वरचित लालसाओं का लाभ उठाने के लिए लिखता हूं—ऐसी कल्पना और निर्णय उन लोगो के अपने हैं। वे लोग जो मुझे जानते हैं, जिनका मेरा हल्का-सा भी सम्बन्ध रहा है वे जानते हैं कि शब्दों को मैंने अत्यन्त पवित्र माना है उनसे किसी भी प्रकार का लाभ उठाने के लिए मैंने प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयास नही किए।

मेरा लक्ष्य यह रहा था कि मेरे देशवासी भौतिक चकाचौंध में रहकर

भी आध्यात्मिक चन्द्रिका के शीतल पीयूष का आस्वादन करें, भगवान् के प्रति विश्वास रखें। मैं अगर रैडीमेड की चीजें बेचने लगूंगा तो गणितीय छल से धन संग्रह अवश्य कर लूंगा किंतु उस धन से मेरे और मेरे परिवार का कितना अहित होगा—यह मैं अच्छी तरह जानता हूं और यह भी जानता हू कि इस मौन धन का भी वातावरण है, इसका भी व्यक्तित्व है। इसके व्यक्तित्व को निर्मल और पवित्र बनाने के लिए जितना श्रम करना पड़ता है उतने श्रम से दूसरे उपायों से ही अर्जित किया जा सकता है।

पाठक मेरे अपने लोग हैं क्योंकि वे मेरी बात सुनते हैं, विश्वास करते हैं और प्रयत्न करते हैं, उनके साथ छल करना अत्यन्त सरल है किन्तु इससे अधिक जघन्य कार्य भी कोई नही है मैं अक्सर यह सोचता हूं कि जिनको सफलता मिल गई वे भाग्यवान हैं किन्तु अपेक्षित कार्य करने पर भी जिनको सफलता नही मिली उनकी निराशा कितनी गहरी हो जाती है?

ऐसे लोगों से मेरा विनम्र आग्रह है कि वे पश्चात्ताप न करें क्योंकि उन्होंने किसी भी मंत्र की साधना करते समय कोई दुष्कर्म नहीं किया है और न ही मैंने अपराध साहित्य या उत्तेजक (वासना उभारने वाला) घटिया दर्जे की बात कही है। माना सफलता नही मिली किन्तु इसके साथ इस स्पष्ट तथ्य को क्यों नजर अन्दाज कर दिया जाता है कि उससे हम अन्तर्मुखी बने हैं उससे हमारे पापों के समानान्तर पुण्यों की शृंखला भी बनी है।

आप गंगा पर पुल बांधने के लिए किनारे से ही मुट्ठी भर-भर कर रेत गंगा की धारा में डाल रहे हैं इससे पुल नही बन रहा आप भी जान रहे हैं कि इतना परिश्रम करने पर फल नही मिल रहा क्योंकि आपकी दृष्टि लक्ष्य पर केन्द्रित है, सफलता ही देखना चाहती है किन्तु मैं उस समय को भी देखता [illegible] जहां खड्डा होता जा रहा है। किसी भी स्थिति में कोई भी काम निष्फल नहीं जाता इसलिए मैं इसी व्यावहारिक पक्ष की ओर संकेत करता हूं कि पुल नही भी बना तो कोई बात नही खड्डा तो हो ही गया है और यह खड्डा हमारे पूर्वकृत पापों के समानान्तर पुण्यों का संग्रह करने के समान है।

सच यह है कि जिस समय इन ग्रन्थो का निर्माण हुआ था उस समय

से अब तक हमारे में बहुत परिवर्तन हो चुका। जैसे आज किसी भी वर्ण का वास्तविक रूप प्राप्त करने के लिए इक्कीस पीढियों तक संशोधन करने पर वर्ण संकरता से मुक्त हुआ जा सकता है उसी तरह हमारे मन और विचारों में आई संकरता से मुक्त होने के लिए भगीरथ प्राप्त करना पड़ेगा। मंत्र जप की संख्या उस युग के व्यक्तियों के लिए थी आज वह गलत रहती है जिन लोगों को सफलता मिलती है वह भी (मेरी दृष्टि में) आंशिक सफलता है क्योंकि उनकी कल्पना इतनी ही रहती है और वे इतनी-सी सफलता से चमत्कृत हो जाते हैं जबकि शत प्रतिशत सफलता का तो रूप ही कुछ और होता है।

सापेक्षता

हम प्रगति कर रहे हैं, तर्क को सप्राण करने लिए हमने बहुत संघर्ष किया है। परम्पराबद्ध गति से हमें घुटन होने लगी थी इसलिए हमने उसका विरोध किया और अपने जीवन को अपने ढंग से जीने का अधिकार हमने प्राप्त कर ही लिया। करने को हम किसी ऐसे देश की निन्दा कर सकते हैं जो बालक को अबोध अवस्था में ही किसी वाद या वर्ग विशेष के प्रति आस्थावान् बनाने के लिए जी तोड़ कोशिश करता है और उसके समूचे जीवन एवं व्यक्तित्व को ही नहीं विचारधारा और चिन्तन पद्धति को भी एक नियत ढांचे में ढाल देता है। हम मानते हैं कि इस प्रकार की कट्टरता और रूढ़ता में व्यक्ति का अपना स्वरूप और सत्ता, विचार और व्यवहार अक्षत नहीं रह पाता और वह अपनी स्वतन्त्र स्थिति की कल्पना तक नहीं कर सकता। किसी हद तक बात ठीक है, खासकर इसलिए कि उनकी इस रूप व सत्ता को हम हमारे नजरिये से देखते हैं किन्तु, व्यक्ति स्वातन्त्र्य की कल्पना सामाजिक जीवन पद्धति में संभव ही नहीं होती।

समाज चाहे कितनी ही स्वतन्त्रता दे, प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा को अनपेक्षित स्थिति तक क्यों न बढा दे? वह मिल नहीं सकती। स्वतंत्रता के साथ ही अनेक इस तरह के शब्द हैं जो उसकी स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। सभ्यता, शिष्टाचार, भ्रातृभाव आदि शब्द जब स्थितियों के रूप मे प्रस्तुत होते हैं तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा सिमटता चला जाता है। आज विश्व के सबसे अधिक स्वतंत्रता, विशेषतया व्यक्ति गत स्वतंत्रता, का समर्थन करने वाले देश भी इन शब्दों और स्थितियों से व्यक्ति को मुक्त नहीं करते।

मेरा आशय यह नही है कि व्यक्ति के लिए कोई आचार संहिता नही होनी चाहिए या सभ्यता एवं शिष्टाचार जैसी बातें अनुपयोगी हैं। मैं इन सामाजिक आग्रहो के परोक्ष परिणामों का विश्लेषण करना चाहता हूं। हमने हमारे बगीचे में जो पेड़ पौधों की कतार लगाई है उसमें व्यवस्था और सौन्दर्यबोध दोनों ही प्रेरक एवं दिशा निदेशक तत्व रहे हैं, उन पेड़ों की काट छाट करने मे भी हम रुचि सम्पन्नता एवं विलक्षणता का प्रदर्शन करना चाहते हैं। इससे किसी को भी कोई आपत्ति नही रहती किन्तु इसी स्थिति का दूसरा पक्ष भी है जो हमे यह समझाता है कि हमारे आग्रहों (भले ही वे व्यवस्था और सौन्दर्यबोध के कारण ही हो) के कारण हमने उन वृक्षों की स्वतंत्रता पर कैंची चला दी है।

यही स्थिति इन शब्दों के रहते हमारी स्वतंत्रता आदि से जोड़ कर देखता है, एक निश्चित मार्ग और किनारों में बांध कर ही जलधारा का नामकरण करता है। सामाजिकता के ये दुराग्रह व्यक्ति पर कितनी अदृष्ट क्रूरता करते हैं—इस तथ्य का विवेचन या विचार ही रोमांचित कर देता है। हमारा खान-पान स्वाद, शौक रहन-सहन, पहनावा जैसी चीजें भी बचपन से ही हमारे पर थोप दी जाती हैं। एक शाकाहारी मछली को छूने से ही कतरायेगा, उसे छूकर अजीब-सा अनुभव करेगा तो मांसाहारी उसे पकड़ने से लेकर काटने तक मे कोई संकोच नहीं करेगा। इस तरह की अनेक आदतें और व्यवहार व्यक्ति को बचपन से ही गतिबद्ध कर देते हैं फिर स्वतंत्रता कहां मिलेगी, कैसे मिलेगी?

मेरा अपना विचार है जिस समय विश्व मे दूरियां थी, यातायात और

सचार साधनों का इतना विकास नही हुआ था, उस समय स्वतंत्रता कुछ अधिक स्पष्ट थी। व्यक्ति जितना अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है, देशों में जितनी निकटता होती जा रही है उतनी ही स्वतंत्रता कम होती जा रही है फिर भले ही उसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता के किन्ही भी सन्दर्भो से जोड़ कर हम इतरा लें।

स्वतंत्रता का हनन उस समय अधिक होता है जब एक देश दूसरे देश पर विजय प्राप्त करके उस पर शासन करता है। प्रत्यक्ष रूप में यह पराधीनता है जो स्वतंत्रता से बिल्कुल विपरीत है। इसके परिणाम उस समय और भी अधिक भयावह रहते हैं जब विजित देश का चिन्तन अपने स्वाभाविक रूप को भुला कर आरोपित चरित्र को जीने लगता है। जिस समय विजेता का गर्व किसी भी देश की विचार-पद्धति पर हावी होता है तो स्वतंत्रता बड़ी दूर की बात बन जाया करती है और आश्चर्य यह कि इस दोष को वे पहचान भी नही पाते।

उदाहरण के रूप में हम हमारे देश को ही लें विदेशियों के आक्रमण और शासन ने हमें स्वतंत्र चिन्तन एवं आत्मनिर्माण का अवसर नहीं दिया, हम कुण्ठित रहे और एक दिन हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली किन्तु उस दासता के परिणामी प्रभाव कितने भयंकर रहे—यह बात हम पर आज प्रकट हुई। अपने हीनभाव को छुपाने के लिये हम विजेताओं अथवा शासकों की पंक्ति में बैठने और उन जैसा आचार व्यवहार करते हुए हमारे वास्तविक चरित्र को भूल गये और यह पराधीनता हमारे चिन्तन में बैठती गई। हमने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और देशीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया किन्तु मूल स्वरूप को पराया समझने लगे। आज हमारा जीवन आयातित आग्रहों और शैलियों में जकड़ा हुआ है अर्थात् स्वतंत्रता हमारे लिए और प्रिय वस्तु बन जायगी। इसके विपरीत समाज से दूर रहने पर व्यक्ति प्रकृति के सीधे सम्पर्क में आयेगा, प्रकृति के सन्देश को सुनने-समझने की क्षमता उसमें उत्पन्न होगी और वह केवल उतनी ही दूर की सोचेगा जो आवश्यकता है, जो प्रकृति की मांग है।

समुदाय के सुख निःसन्देह हमारी पीढियों की खोज का परिणाम हैं, प्रकृति स्वयं विस्तारवादी है नारी की 'अपेक्षा' नर का प्रकृतिक बोध है

और यह अपेक्षा विस्तार का, समाज का, अनेकता का कारण बनती है। परिणामत: व्यक्ति विभाजित हो जाता है, उसका अहम् 'मम' के सोपानों की परम्परा में फैलता जाता है। यह उसका स्वरचित समाज सुख.के बहाने उसकी स्वतंत्रता को छीनता जाता है। किसी भी युग मे व्यक्ति को बिल्कुल अकेले पटक देने की (बात) नही रही क्योकि उसके भीतर कार्य कर रही प्रकृति स्वयं एकाकीपन नही चाहती। वो लोग अपने से साक्षात्कार करना चाहते रहे वे समूह से हटकर अवश्य बात करते रहे। वैसे भी इस तरह का एकाकीपन सभी के लिए रुचिकर नही रहा इसलिए एक सीमित वर्ग ही अपने अकेलेपन की तलाश करता रहा और स्वतत्रता का सही रूप पाने का प्रयत्न करता रहा।

स्थिति आज भी बदली नही है। महानगरों में व्याप्त असन्तोष और उसकी अनेकविध अभिव्यक्ति उन विकारों की देन है जो विस्तृत समाज के कारण जन्मी और पनपी है। शान्तिकामी लोग समाज को छोड़ कर वन-वासी हो जाय यह संभव नही है, न यह व्यावहारिक ही है फिर भी उनको सुख, सन्तोष और शान्ति तो मिलनी ही चाहिए अर्थात् इसी वातावरण मे रहते हुए वे शान्ति प्राप्त कर सकें—यही इस युग की समस्या है। निश्चय से यह मानसिक स्तर पर ही होगा और इसके लिए व्यक्ति को स्वयं को तैयार करना पड़ेगा।

सामाजिक जीवन मे हम स्वतंत्रता की तलाश करते हैं, उसे पाने और उपभोग करने के लिए कानून बनाते हैं किन्तु यह नही समझ पाते कि सामाजिकता ही सापेक्षता है और सापेक्षता स्व को कभी भी मुक्त नही होने दे सकती फिर हम किस तरह की स्वतत्रता चाहते हैं? व्यक्ति का भी इतिहास होता है किन्तु उससे अधिक बडा इतिहास होता है समाज का। समाज का प्रवाह अविच्छिन्न गति से बहता रहता है, उसके चिन्तन की भागीरथी कभी जीर्ण नही होती किन्तु वह उद्गम से गाढतर रूप में जुडी रहती है इसलिए उसका अन्तिम भी आदि से नद्ध है। समाज के इतिहास में व्यक्ति मन्द रहते हैं, विचार तीव्र। यह समाज का चरित्र होता है कि वह अन्त और मध्य को भी को है। स्वच्छन्द शब्द या निरंकुशता की स्थिति में व्यक्ति कर भी बन सकता है और अपनी अनियन्त्रित लालसा

से पीड़ित होकर लुब्धक भी बन सकता है इसलिए वह अप्रस्कृत किंवा विकृत स्थिति होती है फिर भी वास्तविक स्वतंत्रता का रूप समाज से अलग रहने पर ही जाना जा सकता है और यह अलगाव समाज में रहते हुए भी पाया जा सकता है और इससे दूर रह कर भी। समाज मे रहते हुए स्वतंत्रता प्राप्त करना नितान्त मानसिक घटना है और इसके लिए परिपक्व चिन्तन और ठोस वैचारिकता आवश्यक है।

भारत के लिए इस प्रकार की स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता रही है। जितने भी मोक्षमार्गी सम्प्रदाय इस देश में है ये सब परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता की इसी स्थिति का संकेत करते हैं। यो जहां व्यक्ति को सामाजिक प्राणी मान लिया गया वही उसकी सत्ता और व्यवहार 'सापेक्ष' हो गये, उसका एकाकीपन दूसरों से जुड़ गया और ये संबंध परस्परापेक्ष बन गये ऐसी अवस्था मे स्वतंत्रता का 'स्व' समूह से एक रूप हो गया और हम समाज के अनुकूल तंत्र को स्वतंत्रता का रूप देने के लिए बाध्य हो गये।

असंगति वहां से होती है जहां व्यक्ति अपने को समाज द्वारा निर्मित मानकर भी अपने आपको उससे भिन्न समझने की चेष्टा करता है। जहा तक सामाजिकता किसी भी व्यक्ति के अनुकूल पड़ती है, प्रेरणा और सहयोग करती है वहा तक व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न नही उठता किन्तु जहा समाज की मान्यतायें उसमे इच्छायें तो जगा देती है किन्तु उनकी पूर्ति मे बाधा उत्पन्न करती हैं वही व्यक्ति समाज के सामने खड़ा हो जाता है और स्वतंत्रता के सारे परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करने लगता है।

मूलत: आकांक्षाओं और आवश्यकताओं का विस्तार सामाजिकता मे हुआ करता है। एक-दूसरे से स्पर्धा रखना और साधनों का केन्द्रीकरण करने की प्रवृत्ति समाज व्यवस्था की देन है, एकाकी की नही। गंभीरता से विचार करें तो समाज की सघनता जितनी गहन होगी व्यक्ति उतना ही आकांक्षापीड़ित होगा और कामनाओं का यह अनर्गल प्रवाह उसे 'स्व' से दूर ले जाता जायगा। वह जो बाहर है उससे अपने को अलग समझने लगेगा और अपने मे सिमटने की कोशिश करेगा उसमें संग्रह की और एकाधिकार की भावना प्रबल होने लगेगी। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार की

सामाजिक भावना एवं समाज के आग्रह उसे प्रकृति से छिन्न कर डालेंगे, वह कृत्रिम हो जायगा और विकृति ही उसकी अधिक दुर्लभ बन गई है क्योंकि इसके लिए हमारे सामाजिक मूल्यों और विदेशी शैली के दुहरे दबाव से मुक्त होने की समस्या है।

हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम सामाजिक प्राणी हैं और सौभाग्य यह कि मनुष्य हैं। इस दुहरी स्थिति का लाभ कुछ लोग ही उठा पाते हैं अन्यथा घड़ी के पेंडुलम की तरह वे सामाजिकता और वैयक्तिता के बीच झूलते रहते हैं हमारे सामाजिक होने की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि हम हमारे स्व को स्नेह करके भी समष्टि में जुड़े रहते हैं। कई बार स्थिति इतनी कारुणिक हो जाती है कि जिस मां ने बच्चे को जन्म दिया है वह उसे स्तनपान नहीं करा सकती, उसका वक्षःस्थल स्रवित होने लगता है, स्नायुमण्डल में भयंकर उद्वेग आ जाता है किन्तु वह कातर-विवश भाव से अपनी स्थिति पर पश्चात्ताप ही कर सकती है।

व्यक्ति एक परम्परा की देन होता है वह प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में एक तन्तुजाल से बंधा रहता है उसे स्वनिर्भर होने तक पराश्रित रहना पड़ता है और यह परापेक्षता उसे 'स्व' से काटकर पर के रंग व प्रभाव मे रंग देती है। संस्कार, नीति और धर्म जैसे आयाम उसे इस गहराई से समझा दिये जाते हैं कि व्यक्ति अपने आप में भयातुर हो जाता है, ये सारी मर्यादायें और संहितायें उसे एक सीमा मे ही रहने और सोचने को विवश कर देती हैं। ऐसे विषय जिनका पाप और पुण्य से कोई संबंध नही होता और जिनके अप्राप्य होने से व्यक्ति कुण्ठित हो जाता है, और टूट जाता है तथा जिन विषयों से समाज की कोई क्षति नही होती वे भी व्यक्ति के मन मे छाये रहते हैं। हमारी स्मृतियों और आचार संहिताओं में दी गई व्यवस्था को हम देखें तो लगेगा, व्यक्ति और उसका स्व कहीं है ही नहीं। कोई व्यक्ति खाना खाते समय पानी नही पीता और बाद मे पीना चाहता है, तो स्वास्थ्य विज्ञान कहेगा—ऐसा करना अस्वस्थ कर है या दिन मे दक्षिण की तरफ मुंह करके शौच जाने का प्रसंग आ जायगा तो यह स्मृति विरुद्ध हो जायगा। ऐसी अनेक व्यवस्थाएं हैं जिनका पालन करना आज संभव नहीं।

यह अच्छी बात है कि आज की पीढी ने उनका अक्षरशः पालन करने में ढील ले ली है फिर भी उनकी समस्थानिक दूसरी मान्यतायें गढ ली हैं। हमें मान्यताओं और व्यवस्थाओं के विस्तार से अधिक लगाव है, यह हमारी सामाजिकता की प्रकृति एव चरित्र है उच्छृंखलता में मेरा विश्वास नहीं है और न मैं यही मानता हूं कि हमारी दिनचर्या और आचार संहिता मे कोई ठोस एव दमदार बात नही है। विचारणीय बात यह है कि वैचारिक विस्तारवाद ने हमें हमारे स्व से छिन्न कर दिया है या हमारे व्यक्तिगत को अत्यन्त सीमित कर दिया है। इस प्रकृति के दुष्परिणाम राष्ट्र के चिन्तन एवं व्यवहार मे लक्षित हो रहे हैं। हमारे देश मे कानूनो का जितना भार है उतना शायद विश्व के किसी भी राष्ट्र में नही इस पर भी प्रतिदिन कानूनो की कमी पड़ रही है, कानून के इस अनर्गल विस्तार से अपराधों पर नियंत्रण किया जाता है और व्यवस्था बनी रहती है यह एक बात अवश्य है किन्तु इससे व्यक्ति का निजत्व कितना सिकुड़ता जा जा रहा है यह बात हमे समझनी है।

किसी बात को करने से पहले ही नही बाद मे भी हम भय से मुक्त नही हो पाते। मुक्त यौन सम्बन्धों या खान-पान की ही बात नही है ऐसी अनेक छोटी-छोटी बातें हैं जो हमें कार्य कारण का सम्बन्ध समझे बिना ही मान लेनी पड़ती हैं। नास्तिकता कोई स्थिति होती है यह बात मैं नही मानता किन्तु जिस अज्ञात सत्ता के प्रति हम समर्पित होते हैं उसकी भी कोई निर्दोष परिकल्पना करने में हम स्वाधीन नही हैं। आस्तिता को परम्परागत आग्रह के रूप मे स्वीकार करके उसके विधि विधान एवं आचरण सभा जाना हमे निःसंग नही बना पाता। यही एक कारण है कि मन्दिरों मे समाज विरोधी और अनैतिक कार्य होने लये हैं। मूल मूर्तियों की जगह नकली मूर्तियां रखकर धन बटोरने का मतलब यही है कि व्यक्ति को अपने स्व से छिन्न करके रख दिया गया है।

समाज कृत भय और स्वकृत भयों की काल्पनिक विभीषिका से मुक्त होना जितना कठिन और जटिल है उतना ही जोखिम से भरा हुआ भी इस अनपेक्षित और व्यापक भय से परिचित कराने पर ही निर्भय हुआ जा सकता है।

सामाजिकता के हितकर पक्ष में यह तथ्य है कि हम स्वतंत्रता को खोजते हुए उस स्थिति तक जा पहुंचते हैं जहां न स्व है न तंत्र है, न अधीनता है। इसे हम मुक्ति कहते हैं। मुक्ति की मीमांसा बाद में पहले हम यह तो समझ लें कि स्वतंत्रता और स्वाधीनता के वास्तविक अर्थ हैं क्या, इन दोनों में समान रूप से आ रहे शब्द स्व का विश्लेषण हमारे प्रश्न को अधिक स्पष्ट कर देगा। स्व का अर्थ होता है—खुद, निज। यह निजत्व या खुदी एक व्यक्ति का अपना दायरा तो होता ही है किन्तु जहां हम व्यक्ति को समष्टि से निर्मित मानते हैं।

यहां समष्टि किंवा व्यापक तत्व से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हो जाते हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रश्न ऐसे ही बिन्दु पर उठता है जहां स्व का रूप धुंधलाने लगता है। व्यक्ति की अपनी क्षुद्र सत्ता के भीतर विद्यमान विराट् सत्ता को उसकी प्रकृति एवं शक्ति से परिचित एवं एक रूप होने में जहां अवरोध उत्पन्न किये जाते हैं वहीं 'स्व' प्रकट होने लगता है और एक सीमा तक विद्रोही अथवा विमुख बन जाता है।

व्यक्ति की सामाजिकता और मानवीयता के नामों से ऊपर उठ कर हम देखें तो प्रकृति दृष्टि गोचर होती है, यही प्रकृति विभिन्न रूपों में संसार में क्रीड़ा कर रही है। इसलिए स्व को हम थोड़ा व्यापक परिप्रेक्ष्य देते हैं जिससे 'स्व' प्रकृति का बोधक बन जाता है। जितने भी बंधन हैं उनमें प्रकृति रचित बंधन सर्वाधिक प्रभावशाली हैं किन्तु आज मानव निर्मित बंधनों ने व्यक्ति को प्रकृति के मूल रूप से ही दूर फेंक दिया है। मैन मेड ने गॉड मेड से बाजी मार ली है। अपनी आजादी का विचार व्यक्ति को प्रकृति के निकट पहुंचने की परिकल्पना और प्रेरणा देता है, इसलिए वह मानव कृत या समाज प्रदत्त बंधनों से ऊबने लगता है।

पर प्राणी अपनी जाति में प्रेम करता है और उसी में रहना चाहता है, इसी तरह व्यक्ति के रूप में प्रकट हुई प्रकृति अपनी क्षुद्रता से छिटक कर प्रकृति के विस्तृत व स्वाभाविक रूप से आमने-सामने होना चाहती है। मनुष्य को प्रकृति ने गढ़ा और समाज ने उसे सीमा बद्ध कर दिया। व्यक्तिगत इच्छा और आचरण की सीमाओं का समाज की व्यवस्था से

सामंजस्य होना ही चाहिए किन्तु कानून ने जहाँ व्यक्ति को अपने रूप एवं प्रकृति से परिचित कराकर उसकी व्यक्तिता को संरक्षण दिया। वही समाज ने उसके साथ अतिचार किया और उसकी आकांक्षाओं का वध कर डाला। कानून से अधिक वन्दनीय सामाजिक संहिता बन गई जिसने हमारे आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व को चतुर्दिक् बांध दिया।

मुक्ति से पहले स्वतंत्रता चाहिए क्योंकि जब तक हम तंत्र के विस्तार को नहीं समझेंगे तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती। हमारे देश में जिसे स्वतंत्रता कहा जाता है वह प्रकृति का सामीप्य है, प्रकृति के प्रिय शासन से एक रूप हो जाना है। इससे परतर स्थिति निरपेक्षता है, मुक्ति है जहां बंधन नाम की कोई चीज नहीं और स्व के रूप में कोई क्षुद्रता नहीं।

तनावों की अपनी दुनिया है या दुनिया के अपने तनाव हैं बात एक ही है। मनुष्य अपने बनाये जाल में कैद होता जा रहा है, यह सोच कर भी कि वह व्यर्थ की चिन्ता और परेशानियों को खुद पैदा कर रहा है और चाहे तो आसानी से उनसे मुक्त रह सकता है। जब कभी ऐसे अवसर आते हैं जिनमे वह कुछ समय के लिए निश्चिन्त हो सके तो वह विभोर हो जाता है लेकिन फिर उसी घुटन में आ जाता है जैसे नहर में रहने वाला व्यक्ति अपने तंग मकान की कोठरी में। वह जाय तो कहाँ कोई विकल्प नहीं कोई रास्ता नहीं।

आज के दौड़ भरे और संघर्षमय जीवन मे तनाव खुराक बन गये हैं। भयानक स्पर्धा हमारे जीवन में व्याप गई है, हम महा नगर बसाते जा रहे हैं, हजारों आदमियों को एक छत (मनुष्य निर्मित) के नीचे एकत्रित करते जा रहे हैं, एक दूसरे को भ्रातृत्व से जोड़ने का मन्त्र और साधन बतलाते

जा रहे हैं किन्तु वे भीतर से कटते जा रहे हैं। स्पर्धा में समाज चाहिए किन्तु यह समाज जुड़ने का नहीं होता, उससे हम बंध नहीं सकते वह तो पछाड़ने के लिए होता है। समाज को पीछे छोड़ कर हम आगे नहीं बढ़े तो स्पर्धा हमारे लिए व्यर्थ हो जायेगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्पर्धा हमें आत्म केन्द्रित करती जा रही है, हम अपने स्व के प्रति अधिक मोहमय होते जा रहे हैं। अपने आपको प्रतिष्ठित करने के लिए समाज के प्रति सहानुभूति शील कम क्रूर अधिक हो गये हैं। यह घोर स्पर्धा हमे ईर्ष्या के नरक में धकेल चुकी है किन्तु हम अपने अहंकार से इतने पीड़ित हैं कि ईर्ष्यालु न कहला कर स्पर्धाशील कहला रहे हैं, समाज में रहकर समाज से कटते रहने का और अपने खोल में दुबक जाने का मन भावन नाटक रच रहे हैं।

तनावो से मुक्त होने का मार्ग बाद में ढूंढेंगे पहले यह तो देख लें कि आखिर ये तनाव हैं क्यों जिस युग में हम जी रहे हैं, उसके तकाजों की उपेक्षा नहीं की जा सकती और न इसी बात का आज कोई महत्व रह गया है कि हम एकान्त में जाकर रहें और जमाने में हो रहे परिवर्तनों और हमारे चारों ओर के वातावरण के प्रभावो से मुख मोड़ कर प्राचीन जीवन पद्धति को अपना लें।

आज व्यक्ति को जीवित रहने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है, सुबह से शाम तक खटते रहने पर वह मुश्किल से अपने और परिवार के लिए अन्न वस्त्र जुटा पाता है ऐसी परिस्थिति में किसी से यह अपेक्षा करना कि वह नियमित रूप से किसी प्रकार की उपासना के लिये दो चार घण्टे निकाल पायेगा। अव्यवहारिक रहेगा फिर भी मनस्तुष्टि और आत्म शान्ति की उसे सबसे ज्यादा जरूरत है। जिस जमाने मे शुद्ध घी ही काम में आता था उस समय वह भोजन का अंग था और आज वह दवा है। यही बात इस युग मे मानसिक शान्ति की है।

इस तथ्य से सब परिचित हैं कि सुख और दु:ख केवल मानसिक आग्रह हैं। मन की रुचियां इसी वातावरण से निर्धारित आवश्यक होती हैं किन्तु उन पर संस्कारो का भी प्रबल प्रभाव रहता है और ये संस्कार व्यक्ति के पूर्व जन्म कर्मों के आधार पर निर्मित होते हैं। मन की कल्पनाओं

शा निर्धारण यदि वर्तमान पर ही निर्भर रहता तो रावण अपने
ी पिता मुनि विश्रवा की तरह कुटिया में रहता और सिद्धार्थ
र्ती सम्राट बने रहते किन्तु ऐसा नहीं हुआ, इसलिए इतिहास और
हार के आधार पर हम यह मानते हैं कि मन का आग्रह एक हद तक
ारों से परिचालित रहा करता है।

भारतीय विश्वास व्यक्ति के जन्म को संयोग मात्र नही मानता, बल्कि
ायोजित और पूर्व निर्धारित मानता है किन्तु इसके साथ ही वह मनुष्य
ने को कर्मयोनि भी मानता है इसलिए उस पर वातावरण का प्रभाव
श्य पड़ता है। चूंकि मनुष्य पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल भोगने
लिए बाध्य है और इस जन्म मे कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता
ा नया कर्म किया नही जा सकता। जिस सीमा तक हम स्वतन्त्र है उसे
ावित करने वाले आधारों को समझ लें तो तनाव के कारण भी समझ
आ जायेंगे।

हमारा मन जिस स्थिति मे रहता है वह बहुत जटिल और संश्लिष्ट
। मन बाह्य और आन्तरिक, भौतिक और आत्मिक दोनों ही रेखाओं के
द्र में हैं या यों कहा जा सकता है कि इसी से विभाजक रेखा बनती है।
ारे भौतिक (स्थूल) देह, वैद्युतिक (शक्तिमय) देह और मनोमय देह
इसके जो क्रिया कलाप हैं वे अन्तःकरण (सूक्ष्म देह) में—जिसमे मन,
द्धि और चेतना आती है—भिन्न प्रकार के हो जाते हैं इन देहों की
खला मे मन अन्तिम है और सूक्ष्म कारणमय देह में वह प्रारम्भिक
।

असल में हमें मन को पहचानने की आवश्यकता है। जिससे उसकी
ष्टादृष्टि को समय और जीवन के अनुकूल बनाया जा सके। मन सामान्य
ा वातावरण के दवाव से पीड़ित और प्रेरित करता है उसे साधारण
वस्था (नार्मल पोजिशन) मे लाये बिना हम आग्रह मुक्त नही हो सकते
ार आग्रह मुक्त हुए बिना तनावों से दूर नही हो सकते।

मन को प्रभावित, अस्वस्थ या दिग्भ्रमित करने वाले तत्त्वों में आहार
ा भी स्थान है। एक कहावत है—"जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन"
के विषय में हमारे शास्त्रो मे विशद् विवेचन किया गया है। आयु-

वेद में स्वास्थ और स्थूल शरीर को दृष्टि गत रख कर आहार विहार पर विचार किया गया है। तदितर शास्त्रों मे भी भोजन पर विचार किया गया है प्राकृतिक कन्द मूल फल और दूध पर रहना आज के व्यक्ति के लिए संभव नही है इस लिए उसे ऐसे भोजन पर रहने का अभ्यास करना चाहिए। जो सुपाच्य हो, ऋतु के अनुकूल हो शरीर की प्रकृति से मेल खाता हो और उससे आवश्यक कलोरी प्राप्त हो सके। इस प्रकार के आहार मे तामसिक और उत्तेजक पदार्थों को छोड़कर सुलभ वस्तुओं को लिया जा सकता है। शुद्ध और ताजा भोजन हितकर और दूषित हानिकर रहता है।

भोजन तीन प्रकार से दूषित या अहित कर हुआ करता है—पहला भोज्य वस्तु बुसाई हुई, सड़ी हुई, गली हुई, कीड़ों द्वारा खाई गई हो दूसरा उसे बनाने या तैय्यार करने मे कोई दोष (अधिक पकाने या कच्चा रखने जैसे) हो तीसरा बनाने वाले की मनः स्थिति दूषित हो। इनमें प्रारभ के दो दोष हमारे स्थूल शरीर को सीधे और मन को परोक्ष रूप में तथा अन्तिम दोष सीधे मन को प्रभावित करता है, इसलिये भोजन पर ध्यान रखने से हम मन को साधारण स्थिति मे ला सकते हैं और यह बात आज के जमाने मे भी संभव है। जिन लोगों के लिये होटल मे रहना और बाजार मे खाना किसी भी स्थिति मे नही छूट सकता उनका मन पर नियन्त्रण रखने या उसे स्वाभाविक स्थिति मे लाने के लिये दूसरे प्रयत्न करने पड़ेंगे।

हमारे वैद्युतिक शरीर को या ऊर्जातंत्र को प्रभावित करने मे ग्रहान्तरो से आ रही अलक्षित तरंगे भी एक कारण हैं। ये तरंगें मन को किंवा मन की वृत्तियों को प्रेरित करती हैं। मन मे वैसे सत्व, रज और तमो गुणात्मक प्रवृत्तियाँ काम करती हैं और ये गुण ही तत्वों की स्थिति को और अनुपात को नियन्त्रित व प्रभावित करते हैं जो देह मे वात, पित्त, कफ रूप धातुओं के रूप में शारीरिक क्रियाओं का संचालन करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो हमारे शरीर मे बायलाजिकल फिजिकल और केमिकल (जैविक रासायनिक और भौतिक) क्रिया कलाप निरतर चलते रहते हैं। इन तीनों प्रकार की क्रिया प्रति क्रियाओं का स्वचालित

यन्त्र हमारा यह छोटा—सा देह है जिसमें अनेक छोटे-छोटे कम्प्यूटर और व्यवस्थायें हैं, कुछ ऐसे केन्द्र हैं जिनके कार्य पर किसी भी तरह का बाहरी दबाव कारगर नही हो सकता। इतने जटिल तंत्र पर किसी भी प्रकार की अव्यवस्था और शिथिलता तनाव का कारण बन सकती है, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि यह साधारण स्थितियो मे विकार ग्रस्त नही होता छुट-पुट असंगतियों में यह अपनी दुरुस्ती और एडजास्टमेंट खुद कर लिया करता है इसलिये स्थलदेह हमारे तनावों मे कम-से-कम कारण बनता है बाहर की कैसी भी परिस्थितियां क्यों न हों जब तक हमारा मन उनसे नही जुड़ता वे हमारे लिये अर्थहीन रहा करती हैं। दुनिया मे जितनी चीजें हैं उन सबकी हमे जरूरत है याने हम अभावों में जी रहे हैं किन्तु क्या उन सबका अभाव से हमें खलता है ? नही खलता क्योंकि मन उस अभाव से विमुख है।

मान लें हमारे पड़ौसी के पास रेडियो है वह कैसा है, कैसा बजता है—इन सबसे हमे तब तक कोई सरोकार नही जब तक यह मन इस संबन्ध मे नही सोचता। जिस क्षण से इसने पड़ोसी के रेडियो के प्रति आसक्ति मानी उसी क्षण से हम रेडियो के अभावबोध से पीड़ित हो जाते हैं। इसी के समानान्तर एक दूसरी स्थिति मान लें (जैसा हम व्यावहारिक जीवन में देखते हैं। हम रेलगाड़ी के भीड़ भरे डिब्बे में एक सीट पर बैठे हैं, हमारे एक ओर कोई सुन्दर रूपवती महिला बैठी है। दूसरी ओर विरूप वृद्धा बैठी है, हम किसी अन्य विषय के चिन्तन मे मग्न है तो दोनों ही हमारे लिये अर्थ हीन हैं, किन्तु जब मन एक के प्रति आसक्त और दूसरी के प्रति हेय भाव की रचना करने लगेगा तो हमारा रोम-रोम सक्रिय हो उठेगा। हमारा एक पहलू उसके अधिकाधिक निकट होता जायेगा और दूसरा पहलू दूर होता जायेगा।

उपरि वर्णित उदाहरणों मे विज्ञान की तीनों शाखायें कोई प्रभाव-शाली विश्लेषण नही देती क्योंकि बोध उनके लिये अप्रासंगिक अतएव उनकी सीमा से बाहर की बात है फिर भी ये वैज्ञानिक उपकरण और विज्ञान द्वारा निर्मित बाह्य वातावरण हमारे तनाव का कारण बनते हैं।

अभावबोध में दो शब्द हैं अभाव और बोध। बोध का अर्थ होता है

ज्ञान। ज्ञान यद्यपि बुद्धि का धर्म है फिर भी मन, जो अनुभव एवं कल्पना करने में कोई देर नही लगती। भारतीय पद्धति के अनुसार हम जिसे अन्तःकरण कहते हैं वह मन बुद्धि और चैतन्य (चित्त) संयुक्त रूप है। इसमें तीन भिन्न-भिन्न गुण धर्म और प्रकृति के तत्त्व होकर परस्पर इतने प्रगाढ़ रूप से जुड़े रहते है कि अभिन्न-से लगते हैं।

हमारे इन कल्पित तनावों का प्रमुख कारण यह बोध किंवा ज्ञान है ज्ञान इसलिए कि वह अशुद्ध, भ्रान्त और खण्डित रूप में हमारी प्रकृति में आ गया है भारतीय शास्त्र भौतिक आयामों, आग्रहो अपेक्षाओ और कल्पनाओ से प्रेरित ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। यही अज्ञान हमारे मन का प्रिय विषय है और इसी के कारण हम द्वन्द्व भोगी बनते हैं। किसी भी वस्तु या स्थिति के वास्तविक स्वरूप को जान लेने पर वह हमारे लिए तनाव का कारण नही बनती। हम अपने दुर ग्रह, जल्दबाजी और आकांक्षा के कारण परिप्रेक्ष्य का एक ही रूप पसन्द करते हैं इसमे थोड़ा भी विक्षेप या कमी रहने पर आकुल हो जाया करते हैं।

ज्ञान एक समग्र स्थिति है। हम सामान्य स्थिति वाले लोग उसे खण्डित रूप में प्राप्त करने के अभ्यास मे लग जाते हैं क्योंकि हमारे उप-करण एव ज्ञानार्जन करने के केन्द्र सीमा बद्ध हैं, वे क्रमिक और खण्डित रूप मे ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारे शरीर मे स्थित पाच कोश अन्न मय, प्राण मय, मानो मय, ज्ञान मय और आनन्द मय क्रमश: परतर और सूक्ष्म हैं एवं इसी अनुपात मे उनकी शक्ति है। ये एक दूसरे को ढांके रखते हैं। इनका ढके रहना हमारे तनाव का कारण रहता है। इनको क्रमशः पार करने पर हम उदात्त और उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं और यह हमें तनाव हीन करने की दिशा दृष्टि है। वैष्णव दर्शन मे वैकुण्ठ को प्राप्त करने की जो विधियां बतलाई गई हैं और वैकुण्ठ का जैसा स्वरूप बतलाया गया है वे सब ज्ञान लोक और चैतन्य लोक के ही स्तर हैं और इनको हम इसी समाज एवं वातावरण मे रहते हुए प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे में स्थित अहं भाव हमें समष्टि से अलग करता है। वैसे यही अहं प्रकृति का रूप और धर्म है किन्तु उसमें यह विशद व विपुल अतएव यथार्थ रूप मे है और हमारे मे यह संकीर्ण एवं अशुद्ध (मिथित) रूप में।

अहं का अर्थ होता है मैं, और यह मैं हमारे लिए उसी स्थिति में कष्ट कर होता है जब हम इसे विकृत रूप से अभ्यास का विषय बनाते हैं। अहं अपने सीमित रूप से परिचित रह कर जब अयथार्थ की स्थितियों मे उबलने लगता है तो वह विकृत हो जाता है और हम व्यावहारिक भाषा में उसे अहंकार कहने लगते हैं।

अहं से व्यक्ति अपनी सामर्थ्य सीमा से अधिक सोचने समझने लगता है और वह मम (मेरा) और मह्यम् (मेरे लिए) के विकृत विस्तार से जुड़ जाता है। किसी भी कार्य के दायित्व को अपने ऊपर ओढ़ लेता है और फलबुद्धि से प्रेरित होकर सिमटता जाता है। यही सकोच उसे तरह-तरह के तनावों से घेर लेता है, उसकी दृष्टि दूषित हो जाती है, उसका चिन्तन विकार ग्रस्त हो जाता है ऐसी स्थिति मे ज्ञान की समग्रता दुर्लभ वस्तु बन जाती है।

यह स्थिति हमारे आज के जीवन का ऐसा यथार्थ है जिससे हम सब परिचित हैं और यह मानसिक प्रकृति है जिसे हम चाहें तो शुद्ध और रूपान्तरित कर सकते हैं। रूपान्तरण होते ही हमारे सामने काम का द्वार खुल जाता है। हम ज्ञान की उज्ज्वलता विशालता और वैभव को देखकर हतप्रभ रह जाते हैं। इसके बावजूद भी यह स्थिति कोई अकल्पित या असंभव नही है दोनों ही तरह से इस दृष्टि का विकास किया जा सकता है। हम ससार को व्यक्ति के रूप मे न देखकर प्रकृति के रूप में देखने लगें तो ये आग्रह कम हो सकते हैं। किसी भी व्यक्ति के लोभ, अहंकार या क्रोध को देखकर हम उस व्यक्ति के प्रति कोई राग या प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं यह हमारा अभ्यास है या यों कहें कि समाज में रहते हुए हम इस प्रकार के व्यवहार के आदी बनवाया करते हैं। इसके विपरीत क्रोध कर रहे व्यक्ति को अनदेखा करके उसकी क्रोधमयी प्रकृति को देखें अथवा किसी परम सुन्दरी रमणी को देखकर उसके रूप को नाम के साथ जोड़कर जानने पहचानने पाने के बजाय प्रकृति का वैभव समझ कर उसी का लीला विलास समझें तो हमारी दृष्टि अधिक [illegible] और अधिक [illegible] हो सकते है [illegible] अभ्यास से यह स्थिति हमें प्राप्त हो सकती है।

होता यह है कि जो केन्द्र कराता है हम उससे भिन्न समझते रहते है—

अपने आपको और यह भेद ही हमें समिष्ट से अलग करता है। हम जानने वाले हैं और अमुक पदार्थ हमारे जानने योग्य हैं, ये दो स्थितियां जब तक हैं तब तक ज्ञान खण्डित रूप मे ही प्राप्त होगा जिस समय हम इनसे ऊपर उठ जायेंगे उसी समय हम ज्ञान मय कोश को साक्षात्कार कर लेंगे और विश्व का सारा रहस्य हमारे सामने खुल जाएगा, अज्ञात का ज्ञातव्य कुछ रहेगा ही नहीं।

इसी बात को (ज्ञाता और ज्ञेय के मतभेद को) हम एक उदाहरण से समझें—हमे भूख लगती है, नींद आती है, थकावट होती है, खाना खाते हैं—ये सारी क्रियायें हमे भिन्न लगती हैं। जो वस्तु हम खाते है वह हमारे शरीर में नही रहती, (चावल, दाल या शाक भाजी का खेत हमारे शरीर में नही है) इसलिए खाने वाले का और खाने योग्य वस्तुओ का अन्तर है। तात्त्विक दृष्टि से देखने पर यह भेद मिट जाता है क्योंकि जिन तत्त्वों से हमारे देह का निर्माण हुआ है उसमे यह तत्त्व सक्रिय रूप से विद्यमान है और उसे क्रियाशील रहने के लिए उसी तत्त्व की आवश्यकता है। अर्थात् हमारे देह की सरंचना में पृथ्वी तत्त्व का जितना अंश है उसे सक्रिय रहने में जितनी कमी होती है उसी की पूर्ति हम भोजन के द्वारा करते हैं। तत्त्वो का यह रूपान्तरण हमारे भौतिक देह के क्रिया-कलापो का रहस्य है। निद्रा, क्लान्ति, भूख जैसी प्रतीतियां उसी एक तत्त्व के विविध रूप हैं।

आशय यह है कि हम प्रकृति की क्रियाओ को व्यक्ति के रूप मे देखने का स्वभाव बना चुके हैं इसमे परिवर्तन करके व्यक्ति की प्रकृति में उस शाश्वत सत्ता का दर्शन करें जो इस परिवर्तन का कारण है और परिवर्तन शील है। धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास करने पर हमारी दृष्टि में व्यक्ति नही प्रकृति प्रकट होने लगेगी और हम खण्ड बोध के स्थान पर बोध की समग्रता का अभ्यास कर पायेंगे यह भी तनाव रहित होने का एक माध्यम है, तरीका है। दूसरा प्रकार यह है कि हम रहें इसी संसार मे और वे सब कार्य करते रहें जो हमें करने पड़ते हैं किन्तु उनके साथ-साथ हमारे भीतर देखने का अभ्यास भी करें।

बाहर की विविधता को देखकर हमने जिस एकता को पहचानने की चेष्टा ऊपर बताये तरीके से की थी अब हमें बाहर के विस्तार को अपने

भीतर पाने की कोशिश करती है जिस मन ने बाहर घूमते हुए बहुत कुछ देखा था उसी मन को हमारे शरीर मे क्रियारत प्रकृति का मूल रूप से ज्ञान करना है।

इस प्रकार की अन्तर्यात्रा के लिए मन का अन्तर्मुखी केन्द्रीकरण आवश्यक होता है और केन्द्रीकरण की यह समस्या बड़ी जटिल रहा करती है। प्रातः हम लोग मनोनिग्रह करते हुए विकट संघर्ष में फस जाते हैं, बहुत प्रयत्न करके भी असफल रहते हैं या संतुष्ट नही होते भूल तब होती है जब हम मन के एकाग्र होने के अभ्यास की अपेक्षा उसके चंचल हो रहने के समय पर अधिक ध्यान देते हैं। हम उस पर बलात् नियन्त्रण करना चाहते हैं और एक संघर्ष पूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

ऐसा नही है कि मन एकाग्र नही होता, होता है पर उतने समय तक नही जितना हम चाहते हैं। मन पर सतर्क दृष्टि रखना आवश्यक है किन्तु उसे निषेध के दण्ड से समझना जोखिम भरी बात है, वह विषयान्त में चला जाता है यह उसका स्वभाव है किन्तु इसके लिए उसे प्रताड़ित करने से अनावश्यक द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है और हम आगे बढ़ने के बजाय एक बिन्दु पर खड़े रह कर जूझने लगते हैं। तांत्रिको के आनन्द मार्ग मे उनको खुला छोड़कर उसकी दिशायें बदली जाती हैं।

सांसारिक विषयो के प्रति आसक्ति और उपभोगों के प्रति समर्पण भाव मन का सहज धर्म है। उपभोग परायण मन इनके प्रति इतना आसक्त हो जाता है कि वह मना करने पर भी इन पर आ टिकता है याने विषयो पर केन्द्रित हो जाया करता है। इसलिए यह सिद्ध है कि मन को केन्द्रित होना आता है। अभिष्ट वस्तु को। पाने में लिए वह कितने एकाग्रभाव से उद्यम किया करता है—यह तथ्य हमारे दैनिक जीवन मे प्रायः अनुभव में आता है।

एक वणिक (जाति नहीं, व्यवसाय बुद्धि) अपने हानि लाभ पर कितने प्रखर रूप से केन्द्रित रहा करता है, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका पर कितने सघन भाव से आसक्त रहा करता है, एक वैज्ञानिक अपनी समस्या मे उलझा रहता है—यह हमारे लिये देखी और देखी जा रही बात है इन क्षेत्रों में जो व्यक्ति सफल अथवा उल्लेखनीय माने जाते हैं उनकी सिद्धि के

पीछे मन की एकाग्रता प्रबल कारण रहती है।

यो मन स्नेह (तेल) की बिन्दु की तरह तरल, प्रसारशील और बहिर्मुखी होता है और हमारी शक्तिशाली चुम्बकीय विद्युत तरंगो का नियंत्रक रहा करता है। सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्त रहकर बहिर्मुखी केन्द्रीकरण की स्थिति मे आता है।

बहिर्मुखी केन्द्रीकरण में भी शक्ति रहती है किन्तु वह ऐसी ही है जैसी अन्तराणु बल में है या किसी वस्तु के वेग में रहती है अथवा समूह मे रहती है। जिस पानी को हम पीते हैं उसमें अणु रहते हैं, असंख्य परमाणु पुंजीभूत होकर पानी का एक गिलास भरते हैं और उससे हमे शक्ति मिलती है, अथवा पानी की धारा से सीचकर हम खेतो मे अनाज पैदा करते हैं ये सब पदार्थ के परमाणुओं के अन्तरबल के चमत्कार हैं जो सामूहिक रूप मे काम करते हैं और बाह्य किंवा स्थूल कार्य करते हैं?

इन परमाणुओं के अन्त स्थबल को याने प्रत्येक परमाणु के स्वयं के बल को सविज्ञान जानता है और हम भी समझते हैं कि पानी के गिलास मे एकत्रित परमाणुओं का बल यदि प्रकट किया जाय तो अकल्पिक ऊर्जा प्राप्त होगी मन को भीतर समेटना, उसके क्रिया कलापो को बाह्य से हटा कर आन्तरिक लक्ष्यों की ओर केन्द्रित करना ठीक वैसा ही रहता है जैसा परमाणु के अन्तःस्थ बल को प्रकट करना। जिन लोगो को चमत्कारिक सिद्धियां प्राप्त हैं उनके पास यही अन्त.स्थ बल है।

किसी भी मन्त्र का जप करने पर मन को मंत्र पर केन्द्रित करके उसके अन्तःस्थ बल को प्रकट किया जाता है? हम मन को बार-बार इसकी प्रेरणा देकर उसकी प्रचण्ड शक्ति को उद्दीप्त कर सकते हैं और एक बार अन्तर्मुखी बनने पर यह तनावों से दूर हटने लगता है; अज्ञान की धारा को तोड़कर निर्मल होने लगता है।

हमें सिद्धि क्यों नहीं मिलती ?

हमारे चिन्तन ने शक्ति के स्वरूप को साक्षात्कार करने की बजाय अपने आपको उस रूप मे एकाकार कर देने पर अधिक बल दिया है। एक सन्त ने कहा था भगवान को बताना (दिखाना) सभव नही है किन्तु भगवान बनना संभव है। 'सोहं' और 'साहं' का वेदान्ती और शाक्त दर्शन विश्व को अपने मे देखने का सकेत करता है।

निस्सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि हमें शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता नही है क्योंकि शक्ति के पुंज मे तो हम विद्यमान हैं ही बल्कि हमे अपने आपको शक्ति के अवतरण के लिए तैयार करना है। यह शक्ति किस तरह प्रकट हो, हमारी संवेदना का इतना विकास कैसे हो कि वह अपने चरम तक पहुंच जाय, हम शक्ति के प्रवाह मे एक तिनके की तरह लक्ष्य हीन घूम रहे हैं हमें यह विधि, ज्ञान और क्षमता किस तरह प्राप्त हो कि हम इस कर्म रूप सागर के पार पहुच जायें (बहुत संभव है कई लोगों ने संसार को सागर और नदी इसलिए बतलाया है कि वे उसे पार करके बहुमूल्य का क्षेत्र प्राप्त करना चाहते हैं)

इस प्रकार के प्रश्नो का समाधान भारतीय दर्शन ने अनेक तरह से किया है। मन्त्रों का वर्गीकरण रचना और निर्देश भी शक्ति को प्रकट करने (होने) के निमित्त बड़े, व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से किये गये हैं। निष्काम भाव से आत्मज्ञान के निमित्त किये जा रहे प्रयोगो की बात नही है क्योंकि वे दीर्घ कालीन साधना के विषय हैं। हमे प्रस्तुत प्रकरण में उन अनुष्ठानो पर विचार करना है जो किसी प्रयोजन से किये जा रहे हैं और करने पर भी सफलता नही मिलती।

एक व्यक्ति जब बुरी तरह समर्पित भाव से काम करता है और उसे

फल नही मिलता तो निराश होना स्वाभाविक है। ऐसी निराशा से व्यक्ति कभी सन्देह ग्रस्त होकर मंत्र को ही झूठ मान बैठता है। यह मानवीय प्रकृति है। जब हमारे शास्त्र और शास्त्रकार यह निर्देश देते हैं कि अमुक कार्य के लिए अमुक अनुष्ठान करने से पहले यह फल मिलता है, तो वह मिलना ही चाहिए उनके निर्देश और स्वीकृतियां हमारे लिए विश्वास के योग्य गारण्टी हैं। किसी को सफलता मिल गई तो उसका विश्वास एव उत्साह बढ़ता है किन्तु असफलता मिलने पर निरुत्साही और अविश्वासी होने से बचने के लिए हम प्रामाणिक और यथार्थ आधार के रूप मे क्या कह सकते हैं—यही आज का प्रश्न।

काम्य कर्मों को हम दो श्रेणियो मे रख सकते हैं—एक स्व-केन्द्रित, दूसरा पर या समाज केन्द्रित स्वकेन्द्रित का अर्थ होता है जिन कामों के लिए हमें दूसरे की अपेक्षा नही होती, केवल हमारे तक ही जो सीमित हैं जैसे—सम्पन्न होने या लक्ष्मी प्राप्ति के अनुष्ठान रोग मुक्त होने के प्रयोग अथवा मारकेश जैसी ग्रह बाधा और भूत बाधा।

परापेक्ष या समाज केन्द्रित प्रयोगों में—मारण मोहन, उच्चाटन स्तंभन, विद्वेषण जैसे कर्म आते हैं।

सन्तान प्राप्ति या गड़े धन की प्राप्ति जैसे कार्य इन दोनों प्रकार के प्रयोगो के मध्यवर्ती रहते हैं।

पहले हम असफलता के कारणों का सामान्य विवेचन करते हैं। मन्त्र जपने पर एक भौतिक क्रिया होती है। भौतिक शब्द यहां फिजिक का पर्याय है। अर्थात् हमारे देह के सूक्ष्म स्तर मे, संवेदनशील अंगों में एक कम्पन होता है और यह कम्पन एक नियत प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करता है। इस स्तर पर शब्द और शक्ति दोनों समन्वित रूप में रहते हैं ये कर्णेन्द्रिय की ग्रहणशक्ति से सूक्ष्म स्पन्दन दोनों तरह परिणामी क्रिया करते हैं। पहली में ये हमारे स्थूल अंगों से एक प्रकार का रासायनिक स्राव करने की स्थिति उत्पन्न करते हैं, दूसरो से शक्ति को एकत्रित होकर अपेक्षित कौकर्सी पर कार्यक्रम बनाती हैं।

किसी ट्रांस फार्मर मे तेल मे भीगी प्लेटों के कार्य व्यापार की तरह की प्रक्रिया हमारी देह में प्रारंभ होती है।

हमारी असफलता के कारणों में मन्त्र जप के समय होने वाली सूक्ष्म एवं जटिल प्रक्रिया को समझ लेने से हम अच्छी तरह निदान कर सकेंगे। शक्ति हमारे में है और वह अपना कार्य कर रही है किन्तु उसे अपेक्षित दिशा और रूप में कार्य करने के लिए ही हम मन्त्रों का अनुष्ठान करते हैं। किसी भी प्रयोग को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए उससे सम्बन्धित सावधानियां और शुद्धियाँ जान लेना आवश्यक होता है क्योंकि भौतिक और रसायनिक दोनों ही स्तरों पर विशेष प्रकार की क्रिया होती है।

यदि हम सारी सावधानियों और विधियों को समझ कर तदनुसार कोई अनुष्ठान करके भी सफल नही होते तो इसका प्रमुख कारण होता है—मात्रा की कमी।

मात्रा एक प्रकार की सापेक्षता है। हमारे जीवन मे मात्रा का महत्व हर क्षेत्र मे हम देखते हैं। चिकित्सक भी औषधि की मात्रा—व्यक्ति के देह, अवस्था, रोग का प्रभाव और ऋतु आदि को देखकर निश्चित करता है। अनुष्ठानो में मन्त्र जप के लिए बनाई गई मात्रा यद्यपि पर्याप्त होती है फिर भी कई व्यक्ति और अनेक अवसर ऐसे होते हैं जिसमे निर्दिष्ट मात्रा कम रह जाती है।

मात्रा के कम हो जाने या कम रहने के भी कई कारण होते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि जैसे-जैसे मनुष्य विकसित होता है वैसे-वैसे विश्वास कमजोर होता जाता है और तर्क प्रबल हो जाता है। तर्क के समानान्तर व्यक्ति में 'स्व' केन्द्रितता बढ़ जाती है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य की बात तर्कशील मस्तिष्क की ही उपज है। तर्क इतना निष्ठुर होता है कि वह ऐन्द्रिय ज्ञान की संगति के चौखट में विश्वास को जड़कर देखना चाहता है।

मन्त्र जड़ प्रक्रिया नही है, इन वैदिक और मानसिक क्रिया में चेतन तत्त्व का संयोजन आवश्यक है और चेतन के साथ ही हरेक प्राणी का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट हो जाता है। यह अस्तित्व इसी युग की देन नही है—पुनर्जन्म पर विश्वास करने वाले देश का यह विश्वास है कि—हमारे साथ अनेक जन्मो का इतिहास जुड़ा हुआ है। अज्ञात और विस्मृत जन्मों मे किये गये कर्म (दुष्कर्म) मल के रूप में हमारी चेतना में काई की तरह जमे रहते हैं। मन्त्र जप के समय इस मल या काई को हटाने की प्रक्रिया

शुरू होती है और जब तक ये मल दूर नही होते तब तक सफलता नही मिलती।

इस विसंगति से बचने के लिए शास्त्रों की व्यवस्था दी है कि जो भी काम्य कर्म किया जाय उसके पहले उस कर्म के नियत देवता का मन्त्रपर्याप्त मात्रा मे जप लिया जाय। आशय यह कि मान लीजिए आपको रेलगाड़ी की सीटी से ही काम है, तो पहले आप सीटी से सम्बन्धित वस्तुओं को ही काम के लायक बना लीजिए, दूसरे पुर्जे अगर जंग लगे हुए और निष्क्रिय हैं तो कोई आपत्ति नही। मात्रा की कमी के कारण मिलने वाली असफलता का उपचार मात्रा ही है।

दूसरी असफलता का कारण होता है अवरोध मल व्यक्ति के स्वयं के अर्जित दोष हैं अवरोध एक सीमा तक परकृत भी होते हैं। मन्त्र साधन के लिए साधक के जो लक्षण बतलाये गए हैं, वे अवरोध से बचने के उपाय भी हैं। हमारा तार्किक मस्तिष्क पाप नाम की जिस अवस्था को मानसिक दासता और मूर्खता मानता है उसका परिचय हमे इस विन्दु पर मिलता है। जिस व्यक्ति पर उसके स्वयं के दुष्कर्मों का पाप या किसी व्यक्ति की आत्मा दुखने पर दिया गया शाप या गुरु के द्वारा दिया गया अभिशाप अथवा अन्य देवताओं की निन्दा करने से आया हुआ अपवाद रहता है उसे भी देर से सफलता मिलती है।

इस प्रसंग मे मैं अपने जीवन मे घटित घटना सुना रहा हूँ। बचपन मे मैंने नैमित्तिक कर्म के नाम पर सबसे पहला अनुष्ठान पवन पुत्र का किया था। बाल्मीकी रामायण के सुन्दर काण्ड का प्रयोग रहा था वह। नियत समय के आधे से भी पहले ही मुझे कार्य सिद्धि का दृष्टान्त हो गया। मुश्किल से तेरह वर्ष की अवस्था रही होगी और प्रमाद वश मैंने उस अनुष्ठान को पूरा भी किया था या नही—मुझे याद नहीं। कालान्तर मे शनैः-शनैः शाक्त सम्प्रदाय की ओर रुझान होता गया और आज से पच्चीस वर्ष पहले तंत्र मार्ग को ही अपना साधना प्रकार मान लिया। परांबा की शरण ही श्रेयस्कर लगी। परिवार में शक्ति को गायत्री के रूप में पूजा जाता था पर मेरे लिए अनेक रूपों में व्यक्त वह परामाया एक ही थी, जो थी—सहज वत्सल थी।

"विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः
स्त्रियाः समस्ताः सकलाः जगत्सु ।"

मेरे लिए मां का स्पष्ट और विश्वस्त वाक्य बन गया।

एक दिन ऐसा प्रसंग आया कि किसी सज्जन के आग्रह पर मैंने भगवान रामचन्द्र की निन्दा कर डाली। मन में राम के प्रति कोई अश्रद्धा और द्वेष की भावना नही थी, कोरा परिहास ही था जिसके पीछे अवस्था जनित अहंकार, दंभ और मूर्खता हो रही थी किन्तु इसका परिणाम बहुत विक्षोभ कर रहा। धीरे-धीरे इसकी सूचना स्पष्ट से स्पष्टतर रूप में मिलती गई।

उस घटना (निन्दा) के कुछ दिन बाद मैं विष्णु कुमार के साथ यमुना के घाट पर बैठा था कि हमारे पीछे तीन वानर आकर बैठ गए। उन तीनों में से एक ने मेरे हाथ लगाकर अपनी ओर देखने का संकेत दिया। मैं कुछ क्षण तक देखता रहा और मेरे मन में अज्ञात रूप से भय का संचार होने लगा। हम उठकर आ गये। उस दिन सारे दिन मैं विचारमग्न रहा। आखिर ऐसा क्यों ? अब तक भी क्या मेरा पाप सजीव है ?

बात धाई गई हो गई। एक पत्रिका ने अपने विशेषांक के लिए मेरे से लेख मांगा। मैंने हनुमान पर सारगभित लेख लिखा, मेरा विश्वास था कि यह लेख मेरे अच्छे लेखों की श्रेणी का बन पड़ा है किन्तु अफसोस तब हुआ जब विशेषांक में लेख नही छपा। यह पहला अवसर था जब उस पत्रिका में मेरा लेख छपने से रह गया था, वह भी साग्रह लिखवाया गया।

इसके बाद तो एक सिलसिला चल पड़ा। जब भी जयपुर जाना हो और चान्दपोल से निकलना पड़े तो हनुमान जी को प्रणाम करने का एक स्वभाव है और एक नही अनेक बार यह अनुभव किया कि उधर से आने पर बने बनाए काम बिगड़ जाए।

एक बार किसी प्रयोजन वश भैरव का अनुष्ठान करने बैठा तो तीसरे ही दिन दृष्टान्त होता है कि उनका प्रतीक सारमय मेरे द्वार पर खड़ा है और उसके मुख से आवाज नही निकल रही है। मैं धन्य चकित-सा उसके साथ ऊपर जाता हूं, ऊपर विशालकाय वानर बैठा हुआ है। मैं उसे ताड़ता हूं तब कही जाकर उसके (सारमेय के) मुख से वाणी निकलती है।

मैं बहुत व्यथित होता हूं—एक परिहास मे किया गया पाप इतना दृढ हो गया कि नये मन्त्र को चैतन्य होने से ही रोक बैठा। श्रद्धेय हरि शास्त्री जी उन दिनों जीवित थे और वे राजस्थान के ही नही भारत के तन्त्र शास्त्रज्ञो में गिने जाने वाले मर्मज्ञ उद्धत विद्वान थे। उन्होंने मेरी बात पर अधिक ध्यान नही दिया क्योकि वे मूलत: तांत्रिक थे फिर भी मेरे बारबार आग्रह करने पर उन्होने कहा—"हनुमान् [को प्रणाम करने से पहले राम को प्रणाम कर लिया कर।"

एकाधबार तो यह भी चला किन्तु बाद में वह उपचार भी व्यर्थ चला गया। बाद मे क्या किया—यह विस्तृत प्रसग है। बर्षों पुरानी हो गई यह बात।

इस प्रसंग को लिखने का मेरा एकमेव उद्देश्य यही था कि पाप (जिसे हम मानसिक दासता मात्र माने हुए हैं) का कितना गहरा और दृढ़ प्रभाव हमारे अलक्षित मन पर पड जाया करता है। किसी भी मन्त्र के चेतन होने में इन अज्ञात् घटनाओं का प्रभाव भी पड़ता ही है।

कई बार हम अनजाने रूप मे परस्पर विरोधी मन्त्र भी जपने लगते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि दोनों ऋण और धन होकर शून्य बन जाते हैं। गायत्री मन्त्र का जप करने वाले व्यक्ति को भैरव या अन्य रजोगुणी देवता के मन्त्र नही जपने चाहिए क्योकि गायत्री विशुद्ध रूप से साहित्विक मन्त्र है, इसे मोक्षकामी व्यक्तियों को ही जपना चाहिए। यही बात प्रणव मन्त्र—ओम्—की है। प्रणव मन्त्र उच्च और परम एकान्त के प्रतीक कैलाश का समानार्थक है इसका शताधिक जप करने से भौतिक सिद्धि के लिए किये गये अन्य अनुष्ठान निरर्थक रह जाते हैं। गृहस्थ को प्रणव मन्त्र का जप अनुकूल नही रहता। इस मन्त्र के चेतन होने के साथ ही व्यक्ति अकेला पड़ने लगता है। कई पुस्तकों मे मन्त्रो के आता है जोड़ने वाले विद्वानों ने क्या सोच कर जोड़ा यह तो वे ही जाने किन्तु उसके जोड़ने से जो एक अक्षर और बढ़ जाता है। उससे मन्त्र का मूल रूप भी बदलता है और प्रभाव भी। आश्चर्य तब होता है जब शास्त्र में वर्णित निर्वाण या त्र्यक्षर मन्त्र मे ओम् एक फैशन के रूप में बिना समझे-बूझे जोड़ दिया जाता है। नौ अक्षर वाले मन्त्र में एक अक्षर और

जोड़ने से वह दश अक्षर का तो हो ही गया और वह एक अक्षर शेष अक्षरों से विपरीत फल देने वाला रहा तो मन्त्र का अभीष्ट ही बदल जायगा और हम सोचते रह जाएंगे कि सफलता मिलना तो दूर वापस दिक्कत बढ़ती जा रही हैं।

अनुभव के आधार पर मैं विश्वास के साथ कहता हूं कि सांसारिक व्यक्तियों के काम्य या नैमित्तिक प्रयोगों के लिए किये जा रहे अनुष्ठान मे प्रणव का प्रयोग प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करता है। मेरा अपना विचार है कि मोक्षकामियों के लिए प्रणव से बड़ा कोई मन्त्र नही है और सांसारिक सिद्धियों में बाधा डालने की सबसे बड़ी शक्ति प्रणव में है। मेरे इस कथन की प्रामाणिकता का आधार है अनेक व्यक्तियो से ऐसे परीक्षण कराकर मैंने देखा है। अब भी मैं मानता हू कि कोई भी व्यक्ति दस माला से अधिक प्रतिदिन करके देख ले कि उसके सांसारिक जीवन में अकल्पित गतिरोध उत्पन्न होने लगते हैं।

भैरव जैसे देवता की उपासना मे मन्त्र का जागरण तब तक नहीं होता जब तक पूर्व मे किये गये गायत्री मंत्र की मात्रा जितने (या अधिक संख्या मे) भैरव के मन्त्र का जप नही कर लिया जाता। असल मे जितनी संख्या मे हमने गायत्री के मंत्र जपे हैं उतनी संख्या मे भैरव के मन्त्र जपने पर सामान्य स्थिति आती है। सामान्य स्थिति आने के बाद निर्दिष्ट संख्या मे जप करने पर मन्त्र चेतन हुआ करता है।

तीव्र सत्व गुणी मन्त्र का जप करने वाले को किसी भी रजोगुणी या तमोगुणी मन्त्र का जप नहीं करना चाहिए। सामान्य सत्वगुणी मन्त्र का रजोगुणी से यत्किंचित् तारतम्य बैठ जाता है, किन्तु तमोगुणी का नहीं। ऐसे ही रजोगुणी को तमोगुणी के साथ भी तालमेल बैठ जाता है फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि परस्पर विरोधी गुण वाले मंत्रों का एक साथ जप नहीं करना चाहिए। पूर्व मे किये गये मन्त्र जप यदि वर्तमान में किये जा रहे मन्त्र से विपरीत गुण-प्रभाव के रहे हैं तो निश्चय से मन्त्र थोड़े विलंब से चेतन होगा इसलिए धीरज रखना चाहिए।

सामान्य व्यवहार के रूप मे किसी भी व्यक्ति को विशेषकर उस स्थिति मे जब कि उसे संसार में सांसारिक बनकर उन्नति करनी

रजोगुणी मन्त्रों से प्रारंभ करना चाहिए, क्योंकि यह मध्यवर्ती स्थिति है थोड़ा शुद्ध होने पर यह सत्वगुण में प्रवेश करता है और नीचे उतरने पर रजोगुण के क्षेत्र में पर्यवसित हो जाता है।

मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण करने से भी मन्त्र सिद्धि नहीं होती। अशुद्ध कई तरह से होता है। मन्त्रोपदेश करने वाला व्यक्ति स्वयं तीन बार बोलकर सुनाता है और बुलवाकर सुनता है। अशुद्धि में वाक्‌दोष, यतिदोष, बलाघातदोष और विरामदोष मुख्य रूप से आते हैं। वाक् दोष का अर्थ होता है जो शब्द जिस तरह से बोला जाता है उसे भिन्न तरह से बोला जाय जैसे बालक रोटी को लोटी और चाचा को ताता बोलते हैं। ये दोष उच्चारण करने वाले अंगों में विकार आ जाने पर होते हैं जिनको सतह अभ्यास स दूर किया जा सकता है। संस्कृत पढ़ने से व्यक्ति का उच्चारण निस्सन्देह रूप से निखरता है, वच जैसी औषधियों के प्रयोग से भी उच्चारण करने वाले अंग निर्दोष होते हैं।

यतिदोष में हम मन्त्रों के छन्दगत रूप को लेते हैं। मंत्र पाँच अंगों में छन्द भी एक प्रमुख तत्त्व रहता है। प्रत्येक छः की एक उच्चारण शैली-यति-होती है। भैरवी राग के बोलों के मालकोश में गाने से यतिदोष में गाने से यतिदोष होता है। कभी-कभी हमें यति-नगण्ण-सा परिवर्तन करने को भी बाध्य होना पड़ता है जैसे दुःख सप्तशती के।

उत्थाय च महासिं हं

(इस) श्लोक में छन्द के अनुसार बोलने पर महासिं बोलना पड़ेगा जिसका अर्थ होगा बड़े सिंह को उठाकर और यह विपरीतार्थक हो जायगा इसलिए महासिं हं बोलेंगे और इसका अर्थ होगा बड़ी तलवार उठाकर। कभी-कभी दो-तीन श्लोक एक ही क्रिया से जुड़े रहते हैं इसलिए उनको उपयुक्त अर्थ का प्रतिपादक बनाने योग्य रूप देने के लिए भी यति पर ध्यान दिया जाता है।

बलाघात का अर्थ है जिस अक्षर पर जोर देना है उसी पर दिया जाय। हम हमारे व्यवहार से अन्य शब्दों या वाक्यों पर न जाकर उदाहरण के लिए केवल 'क्या' शब्द को ले लेते हैं। इस एक वाक्य को हम बलाघात के आधार पर ही प्रश्न, आश्चर्य, आक्रोश आदि का बोधक बना डालते हैं।

विराम दोष बहुत कुछ यदि जैसा ही है। जहां हमें विराम करना चाहिए वहां विराम न करके निरन्तर करते जाए तो अनर्थ होने की संभावना हो सकती है। जैसे

"या श्रीः स्वयम् सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।"

दुर्गा सप्तशती के इस मन्त्र में—या श्रीः स्वयम् सुकृतिनां भवनेषु, अलक्ष्मीः पापात्मनां, कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः (जो पराशक्ति पुण्यवानों के घर में स्वयम् श्री स्वरूप है, पापियों के यहां अलक्ष्मी के रूप में है और बुद्धिमानों के हृदय में बुद्धि के रूप में है. इस रूप में यति के अन्तर्गत ही विराम में यत्किंचित् परिवर्तन करने पर अनुकूल अर्थबोध हो पाता है।

हमारे यहां एक ही तत्त्व के लिए अनेक मंत्रों का निर्देश किया गया है। यह वास्तव में हमारे लिए वरदान है। होता यह है कि जिस तरह हमारे पांच भौतिक देह को एक संज्ञा या नाम दे दिया जाता है उसी तरह वे मन्त्रों को भी नाम दिया जाता है। गणपति, भैरव, शिव आदि देवता उन मन्त्रों के नाम हो हैं। गणपति या शिव या शक्ति एक विशाल परिप्रेक्ष्य है इसलिए कई मन्त्र गणपति के या शक्ति से हो सकते हैं। इसमें कोई विचित्र या विरुद्ध बात नहीं है। हमारा भी एक ही नाम नहीं होता—हमारे मित्र हमें किसी नाम से बोलते हैं, सन्तानें किसी और नाम से, माता-पिता किसी दूसरे नाम से, बहनें-सालियां-सलहजें किसी अन्य नाम से पुकारते हैं इन अनेक सारे सम्बंधों और संज्ञाओं का समावेश हमारे मूल नाम में हो जाता है यही स्थिति देवताओं के नाम से जुड़े परिप्रेक्ष्य से संगत हो जाती है।

ये अनेक मन्त्र हमारी सुविधाएं हैं। मंत्र चुनना, उपदेश लेना और उसे साधना बहुत संवेदनशील क्रिया है। यह सारा समारंभ इतना सुकुमार और जटिल है कि तनिक-सी असावधानी करने पर सारा आयोजन निरर्थक हो जाता है। जिस तरह कन्या का वर के साथ विवाह करते समय सम्बन्धों के भविष्य को अनेक प्रकार से परखा जाता है उतनी ही सावधानी मन्त्र के चयन, उपदेश, साधन में रखनी पड़ती है।

कई बार कई मन्त्र जिन अक्षरों से प्रारंभ होते हैं वे हमारी

अथवा जन्म राशि से मेल नहीं खाते। तत्पश्चात स्तर पर उनमें और हमारे में परस्पर अरिभाव होता है, निश्चय से ऐसे मन्त्र हमारे लिए निरर्थक या विपरीत फल देने वाले हो सकते हैं। मन्त्रों की अनुकूलता और प्रतिकूलता देखने के लिए कुलाकुल चक्र और मित्रारि चक्र से जान लेना आवश्यक रहता है।

एक देवता या एक काम के लिए अनेक मन्त्र रहने से हमें यह सुविधा रहती है कि हम उनमें से वही मंत्र चुनें जो हमारे अनुकूल पड़ता है। यदि ऐसा अवसर आ जाय कि एक ही मन्त्र हमारे सामने है और उसी की साधना हमारे लिए आवश्यक है तो ऐसी परिस्थिति में हमें विपर्यय करके ठीक कर लेना पड़ता है जैसे बीजों से बनने वाला मन्त्र है—"ऐं ह्रीं श्रीं" इसे श्रीं ह्रीं ऐं' कर सकते हैं। कोई श्लोकबद्ध मन्त्र है तो उसके अर्थ को अक्षत रखते हुए हम शब्दो के संयोजन मे विपर्यय कर सकते हैं किन्तु ऐसा करना अत्यन्त विशिष्ट स्थिति में ही ठीक रहता है। समानान्तर दूसरे मन्त्र मिलने पर ऐसा परिवर्तन नहीं करना चाहिए एवं इसके लिए भी अधिकृत व्यक्ति की ओर से या परामर्श से करने की व्यवस्था है।

यों तो उपासना के लिए, विशेषतया सकाम कर्मों के लिए, कर्मानुसार ऋतुएं नियत हैं। ऋतुओं का अपना महत्त्व है। ग्रीष्म ऋतु में जो दाहकता और शोषकता है वह वसन्त में नहीं है, वसन्त में जो उन्मादन और सम्मोहन है वह वर्षा मे कहां है। लोक प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठलाते हुए मारण, मोहन जैसे प्रयोगों की ऋतुओं का निर्देश किया गया है। मारण कर्म वसन्त ऋतु में या वर्षा ऋतु में नहीं किया जाता इसलिए कोई करता है। तो उसे इतना श्रम करना पड़ता है कि लोक प्रकृति के अनुभवनीय ग्रीष्म साधना के पिण्ड में ही प्रखर रूप से प्रकट हो सके। ऋतुओं के लिये दी गई व्यवस्था हमारे लिए अनुपालिनीय है किन्तु इसके विकल्प के रूप में हम एक अहोरात्र मे (दिन रात मे) छहो ऋतुओं का वर्णन मान लेते हैं। इसलिए अनिवार्य स्थिति में हम ऋतु के स्थान पर समय ग्रहण कर लेते है।

उन कर्मों मे जो किसी दूसरे व्यक्ति पर किये जाते हैं, साध्य व्यक्ति की स्वयं की स्थिति भी महत्त्व रखती है। जो व्यक्ति सच्चरित्र है, आस्तिक

और कार्य शील है, जिसके पास स्वयं की साधना है, जो किसी अन्य उपाय से रक्षित है या जो किसी शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के संरक्षण मे है उस पर मारण जैसे मोहन सामान्य प्रयोग कारगर नही होते। विशिष्ट प्रयोग ही अपना प्रभाव दिखला सकते हैं। उदाहरण के लिए राजा या राज्य के पद पर स्थित व्यक्ति पर साधारण मारण प्रयोग सफल नही होते। उनके लिए विशिष्ट प्रयोग ही सफल-सार्थक रहते हैं। यही बात उन लोगों पर लागू होती है जो साधना सम्पन्न हैं।

इन स्थितियों मे बलाबल का विचार करना पड़ता है क्योंकि हमारा मन्त्र एक द्वन्द्व में से गुजरता है और उसमें से तभी पार हो सकता है जब सामने वाले के रक्षक व्यूह को भेदने की शक्ति हो।

जो व्यक्ति अपनी ग्रह बाधा या बीमारी आदि को दूर करने के लिए प्रयोग करते हैं उनकी भी संभावित बाधा से अधिक शक्ति वाला अनुष्ठान करने पर ही अपेक्षित सफलता प्राप्त होती है।

संक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि मन्त्र जैसे माध्यम को हम साधना चाहें तो पहले उसके सम्बन्ध से ज्ञातव्य बातें पूरी तरह से जान लें। खास कर उस स्थिति में जब कि हमारे लक्ष्य भौतिक हों। यह आवश्यक नहीं है कि हम जो जानना चाहते हैं वह सब एक ही पुस्तक मे मिल जाय ऐसा संभव भी नही है क्योंकि इतने व्यापक विषय को एकत्र संग्रह करना दुष्कर कर्म है। इससे भी अधिक सुगम यह रहेगा कि हम किसी निष्णात व्यक्ति से समझ लें।

प्रणव मन्त्र

हमारे यहां प्रणव मन्त्र का बहुत प्रचार है। प्रायः प्रत्येक मन्त्र के प्रारम्भ में प्रणव मन्त्र जोड़ कर बोलने की परम्परा एक विशिष्ट वर्ग का

अभ्यास बन चुका है। कुछ प्रेसों ने तो यह नियम-सा कर रखा है कि ये अपने यहां छपने वाली मंत्र या संस्कृत भाषा की धार्मिक पुस्तक में प्रणव मन्त्र जोड़ेंगे ही भले ही उसकी आवश्यकता और औचित्य हो या न हो।

प्रणव मन्त्र के महत्व को भगवान कृष्ण ने गीता में स्वीकार करते हुए कहा है—'मंत्रो मे मैं प्रणव हूं' हमारी कुण्डलिनी का जागरण होता है तब भी प्रणव का या इससे मिलता-जुलता अनुवाद सुनाई देता है। प्रणव बड़ा पवित्र और शक्तिशाली (शक्ति का विस्फोटक) मंत्र है किन्तु इसका प्रयोग करते समय हम यह तो देख लें कि इससे किस प्रकार की शक्ति प्रकट होती है और इसकी पवित्रता हमारे लिए कितनी व किस रूप में उपयोगी है।

प्रणव की पवित्रता से तंत्र शास्त्र भी परिचित हैं किन्तु तन्त्र इसके अंधाधुध उपयोग की अनुमति नही देता। इसके स्वतन्त्र देवता हैं गणपति, गणपति विघ्न विनायक हैं और ऋद्धि सिद्धि के स्वामी हैं। उनको विधिवत् अर्चित न करने पर असफलता और विघ्न आ जाते हैं क्योंकि विघ्नेश्वर ही विघ्नों को नियन्त्रित करते हैं और सिद्धि दाता ही सिद्धि प्रदान करता है।

गंभीर दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि हमारे यहां मांगलिक कर्मों के निर्विघ्न सम्पन्न हो जाने के लिए हम सबसे पहले गणपति का पूजन करते हैं हर काम या एक ही काम के प्रत्येक पदक्षेप के साथ गणपति का पूजन नहीं करते। असल मे गणपति के रूप मे हम प्रणव मन्त्र की पूजा करते और तंत्र-शास्त्र की दृष्टि से इसके लिए यह कहा जाता है कि विभिन्न लोगों को मन्त्र साधन मे गलती होने की संभावना हो या जो साधक असस्कृत व स्त्री जाति के हों वे प्रणव मन्त्र का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसी ही कामना हम गणेश का पूजन करके करते हैं। गणेश शाक्तों और वैष्णवों में समान रूप से पूज्य हैं। पराबा के परिवार में होने के कारण तांत्रिक इनको अपना मानते हैं और प्रणव का प्रतीक होने के कारण वैष्णव इनको प्रथम पूज्य मानते हैं। गणेश प्रणव के मूर्त रूप हैं किन्तु वे भवबीज भी ह इसलिए भौतिक कार्यों में सिद्धि एवं ऋद्धि प्रदान करने के निमित्त भी उनका स्मरण किया जाता है और वे अपने भिन्न व्यक्तित्व के कारण प्रणव की विशुद्धता से युक्त होकर भी रजोगुण की विस्तार-शीलता के द्योतक बन जाते हैं।

गणेश के जन्म के सम्बन्ध में हम एक कथा पढते हैं—मां पार्वती ने अपनी रक्षा के लिए एक पुतला बना कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर दी तथा उसे द्वारद्वेश पर स्थापित करके भीतर चली गई। पीछे से भगवान शंकर आये, उन्होंने प्रतीक को देखा और यह अनुभव किया कि उसमें कही दोष है, उसमे इतनी शक्ति नही कि पर्याप्त रूप में रक्षा कर सके। शंकर की दृष्टि मे दूषित और जीर्ण वस्तु टिक नही सकती सो उन्होने उसका शिरश्छेद कर दिया।

शंकर को भीतर आया देख पार्वती ने आश्चर्य से पूछा कि द्वाररक्षक का क्या हुआ? और जब उन्होंने हालात जाने तो बड़ी दुःखी हुई। शंकर ने उनको प्रसन्न करने के लिए हाथी का सिर रख दिया।

यह कथा थी—इसका रहस्य यह भी हो सकता है कि जितने भी आगम, यामल और तन्त्र के मन्त्र हैं उनके उपदेष्टा शंकर हैं और सुनने वाली पार्वती हैं। इतने मन्त्र सुनने के बाद पार्वती के मन मे आया कि देखे वह भी एक मन्त्र की रचना करें और उन्होने मन्त्र बनाकर उसमे प्राण प्रतिष्ठा कर डाली किन्तु वह मन्त्र प्रबल शक्ति सम्पन्न नही था और उसमें दोष भी था इसलिए शकर ने उसमें संशोधन कर दिया।

क्या था यह सशोधन—यह था प्रणव मंत्र। गजानन की आकृति हाथी के सिर से मेल खाने वाली है। हाथी के और सूड ॐ कान जैसी आकृति बनाते हैं इस प्रतीक कथा के माध्यम से शंकर ने यह शिक्षा दी कि जिस किसी मन्त्र के अपूर्ण अथवा दूषित होने की संभावना हो उसमें प्रणव मन्त्र जोड़ने पर वह मंत्र पूर्ण और निर्दोष हो जाता है।

यह विवेचन वैष्णव मार्ग के लिए अधिक सानुकूल रहता है। तांत्रिक उपासना मे वणा और स्त्रियों के बीच कोई सीमा रेखा नही है। वह सारे लोग शाक्त हैं और सबको समान अधिकार है। उनकी पूजा शक्ति से प्रारंभ होती है।

तांत्रिक और वैष्णवी विधियो को हम क्षण के लिए अलग रख कर प्रणव पर विचार करते हैं। शास्त्रों की व्यवस्था विशेषकर शाक्त सम्प्रदाय की परम्परा को देखकर हम यह मानने लगते हैं कि प्रणव सामाजिक कामों की सिद्धि के लिए किये जा रहे अनुष्ठानों वाले मन्त्र में उपयोगी नही

रहता। कारण स्पष्ट है कि यह विशुद्ध सात्विक है। यद्यपि सत्वगुण अवरोधक और आवरक नही है, फिर भी इसका गुण और प्रकृति है।

सत्व गुण एकाकी है, मनुष्य जब अपने आपको प्राप्त करने निकलता है तो सत्वगुण ही निर्मल से निर्मलतर होता हुआ विशुद्ध और प्रकृष्ट सत्व के रूप मे पर्यवसित होता है। उस समय उसमे रजोगुण और तमोगुण का लेश मात्र भी नही बचता।

प्रणव विशुद्ध सत्व की स्थिति तक ले जाना वाला है इसलिए इसमे गहन एकाकीपन है, हिमालय जैसा स्वच्छ और उदात्त एकांत है इसलिए जपने पर यह एकाकीपन को उभारता है। एकाकीपन उभरने का अर्थ यह होता है कि हमारे पारिवारिक जीवन में और भौतिक पर्यावरण मे अप्रिय स्थितिया उत्पन्न होने लगती हैं जो विघ्न न होकर भी विघ्न जैसी बन जाती हैं। हाथी अपने रास्ते से जा रहा है किन्तु उसके पैरों से छोटे-मोटे पौधे टूट रहे हैं अथवा उसके शरीर से टकराकर पेडों की टहनियां टूट रही हैं—यह हाथी का दोष नही है बल्कि हाथी के साथ यह जुड़ी हुई अनिवार्य परिस्थिति है। यही हाल सत्व गुण के एकान्त और पवित्रता का है।,

मेरा कई व्यक्तियो पर किया गया अनुभव है कि जहां 'ओं' (प्रणव) के जप की मात्रा एक हजार से अधिक हुई वही जागतिक सफलताओं मे अवरोध आने लगते हैं, जप करने वाले व्यक्ति को अनेक प्रकार की अकल्पित समस्याए घेरने लगती हैं। ओम् के जप से उत्पन्न उर्जा का यह पहला परिणाम है। इसीलिए रजोगुणी और तमोगुणी मन्त्रों एवं अनुष्ठानों मे इसका उपयोग नही किया जाना चाहिए।

संन्यासी के लिए प्रणव मन्त्र से बढकर कोई मंत्र नही हो सकता किन्तु गृहस्थ के लिए इससे अधिक अप्रिय कोई दूसरा मंत्र नहीं, हा, कुछेक मंत्र इस प्रकार के होते हैं जिनमें प्रणवमंत्र एक अनिवार्य अंग होता है जैसे मानवी देह पर रखे हाथी के सिर (जिन्हें हम गणेश कहते हैं उन) के लिये।

कुछ व्यक्तियों ने प्रणव के महत्व का प्रदर्शन इतने विकृत रूप में किया है कि उसके सम्मान के स्थान पर अपमान की स्थिति बन जाती है। त्र्यक्षर, षडक्षर और नवार्ण जैसे मंत्रों के प्रारम्भ मे 'ओम' को जोड़कर मूल मंत्र के रूप को विकृत कर दिया जाता है। इस तरह के संशोधन से

हाँ वह मंत्र तीन अक्षर का था वहाँ चार का और जहाँ नौ का था वहाँ स का हो जाता है। साधक निरन्तर जप करके भी असफल होता जाता या विपरीत स्थितियाँ देखता है तो कारण नही समझ पाता जबकि इस कार की विसंगति का आधार प्रणव मंत्र रहा है।

गायत्री मंत्र

वैष्णव मार्गी उपासना में गायत्री अति प्रचलित मंत्र है। ब्राह्मण के लिये गायत्री से अधिक महत्वपूर्ण अत एव उपास्य दूसरा कोई मंत्र नही । गायत्री को वेदमाता कहा जाता है, क्योंकि वेदों का अर्थ ग्रहण करने की योग्यता गायत्री मंत्र के जपने से प्राप्त हो सकती है।

गायत्री असल में छन्द है। इस मंत्र को देवता के आधार पर गायत्री मंत्र नही कहा गया है बल्कि छन्द के कारण इसे गायत्री मंत्र कहते हैं। छन्दों मे जिस तरह अनुष्टुप् को सर्वार्थ सिद्धि दायक माना जाता है। उसी तरह वैदिक मन्त्रों में गायत्री को शुद्धि का प्रतीक माना जाता है।

प्रत्येक मंत्र के पाँच अंग होते हैं—ऋषि, छन्द देवता, शक्ति और बीज। छन्द भी मन्त्र का अंग है। लय और यति का ज्ञान मंत्र के जप करने के पहले करना आवश्यक रहता है। यही लय और यति छन्द कहलाता है। लय प्रत्येक अक्षर के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ तत्व है इसलिये बीज मंत्र भी यति अत एव छन्द मय है किन्तु वे इतने सूक्ष्म अथवा अल्पाकार रहते हैं कि उनके लिये किसी भी छन्द की परिभाषा परिपूर्ण नही हो सकती इसलिये वे छन्द से नैसर्गिक रूप से युक्त होकर भी छन्दों की अभिधान परक सीमा में नही आते।

गायत्री छन्द की जनप्रियता और प्रभावशालिता का इससे बड़ा क्या प्रमाण होगा कि सभी प्रमुख देवताओ (के मन्त्र) गायत्री छन्द में हैं। वेदान्त में जो महत्व गीता का है, छन्दों में गायत्री का है।

एक युग था जब ब्राह्मण निस्पृहभाव से समाज की कल्याणकामना करता हुआ एकान्त वन प्रान्त में रहा करता था। विवेक उसकी पहचान थी तपस्या उसका जीवन था। भौतिक आकांक्षाओं और सांसारिक सुखों के प्रति उसे अभिरुचि नहीं थी। वेदों की ऋचा से उसका दिन प्रारंभ होता था, अपने वातावरण को वह सहजतापूर्ण दृष्टि से देखता था और शुद्ध एवं शान्त मन से समाज के मंगल की कामना करता था। उसके यज्ञ, उसके स्तोत्र पाठ उसकी शिक्षायें समाज को हानि से बचाकर सुख शान्ति दिया करती थी। प्राचीन शास्त्रों में जितना शोधपूर्ण ज्ञान भरा हुआ है वह सब इसी ब्राह्मण की साधना रही है। (ब्राह्मण शब्द को नहीं जाति का प्रतीक माना गया है)।

उस युग में गायत्री छन्द में रचित यह मंत्र ब्राह्मण के लिये परम्परागत निधि रहा करता था। ऐसे परिप्रेक्ष्य में गायत्री का तत्व अपनी स्वाभाविक शक्ति का परिमल साधक में और समाज में विकीर्ण करता रहता था। भगवान् शंकर ने यौगिक क्रिया द्वारा जिस तीसरे नेत्र का उद्घाटन किया था, गायत्री मंत्र का उपासक उसे केवल सविता देवता की सात्विक आराधना द्वारा प्राप्त कर लेता था। विशुद्ध सत्वगुणी यह मंत्र व्यक्ति को आत्मज्ञान (प्राप्त) कराने के लिये दिव्य दृष्टि और आलोकाभिसिंचित किया करता था। शिलोञ्छवृत्ति पर जीवित रहने वाले या गौ के गोबर से निकले अक्षत जौ के दानों को साफ कर उनका आहार करके गायत्री का पुरश्चरण करने वाले ज्ञानमय अथवा वेदमय होने के कारण देवताओं के भी पूज्य और सम्राटों के भी वन्दनीय होते थे।

समय बदला, समाज बदला, सामाजिक मूल्य और व्यवहार बदले, किन्तु गायत्री के रूप में प्रचलित यह मंत्र नहीं बदला। देवता नहीं बदले, किन्तु मन्दिर और पूजक बदल गया। आज भी गायत्री मंत्र की प्रतिष्ठा और आकर्षण वही है जो पहले था किन्तु हम अपने परिवर्तित स्वरूप को नहीं जान रहे इसलिये गायत्री हम से दूर जाती जा रही है, उसके जप से जो शक्ति प्राप्त होनी चाहिए नहीं हो रही। हम उसको प्रचार के कंधों पर बिठला कर जाति और लिंग भेद की सीमाओं से ऊपर उठा रहे हैं। . . पवित्रता का प्रचार करके आत्म विज्ञापन कर रहे हैं।

वास्तविकता यह है कि यह प्रचार एक क्रान्ति हो सकता है उपलब्धि और दिशा नही हो सकती क्योंकि गायत्री मत्र की पवित्रता को धारण व प्रकट करने के लिये अपेक्षित पात्रता जब तक उत्पन्न कोई व्यक्ति पवित्र पात्र में दूध रखने की अपेक्षा दूध से ही धोना-साफ करना शुरू कर दे तो क्या परिणाम होगा यह हम जानते हैं।

गायत्री मंत्र इस युग का नही है। इस बात को हम ऐसे भी कह सकते हैं कि हम उस युग के अनुरूप नही हैं जिस युग मे गायत्री मंत्र प्रकट-प्रत्यक्ष था। कलियुग तक आते आते हमारी विचार धारायें, व्यवहार और वातावरण इतना दूषित हो गये हैं कि उसमे गायत्री की स्वच्छता का निर्वाह हो ही नहीं सकता जिस मत्र के लिये उस युग में भी शर्तें थी, पाबन्दी थी जाति और लिंग की मर्यादा थी उसी मंत्र को आज सर्वजन प्रचारित कर उसका अवमूल्यन नही कर रहे क्या?

आज के व्यक्ति की अपनी महत्वाकांक्षायें हैं, परिवारिक और सामाजिक तकाजे हैं, उसमें वह निःस्पृहता है कहां जो गायत्री मंत्र के लिये अपेक्षित है सच यह है कि हमारे में गायत्री मंत्र की साधना के लिये अपेक्षित मात्रता नही है और इस उच्च पात्रता को प्राप्त करने के लिये हमें आहार-शुद्धि देह-शुद्धि विचार-शुद्धि, वाक्-शुद्धि और मन-शुद्धि, करनी पड़ेगी। यद्यपि ये सारी शुद्धियां दूसरे मन्त्रों में भी आवश्यक हैं किन्तु गायत्री में तो ये परमावश्यक हैं।

गायत्री भी व्यक्ति को निर्मल करती है और उसकी पात्रता या धारणा शक्ति में वृद्धि करती है किन्तु इसी मंत्र के जप से अगर हम इन प्रारंभिक कामो को करना चाहें तो स्थिति यह होगी कि दवा से ही हम पथ्य और अनुपान का काम ले रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि दवा का जो प्रभाव हमें मिलना चाहिए वह कितनी देर से मिलेगा अथवा मिलेगा भी या नही?

इन सबके बावजूद भी यह स्मरण रखना चाहिए कि गायत्री मंत्र शुद्ध सत्व गुणी है, ज्ञान मार्गी है, आनन्द मार्गी नही है। इससे राजसी सिद्धियां वैभव और सांसारिक सुख प्राप्त नहीं हो सकते, न तमोगुणी अभिचारादि कर्म सफल हो सकते।

जो लोग जुगों तक सुख सम्पत्ति की कामना करते हैं उनके लिए गायत्री मन्त्र अनुकूल नही रहेगा। एक बार गायत्री का जप करने पर पाते। शास्त्र में किसी तमोगुणी या रजोगुणी देवता के मंत्र की साधना करने के लिये जितनी सख्या में जप करने की बात लिखी गई है वह एक सीमा तक सही है किन्तु जिस व्यक्ति ने गायत्री मन्त्र का जप किया है उसे गायत्री मन्त्र के जप की संख्या से दुगुनी संख्या में साध्य मन्त्र का जप करने पर तो प्रारंभिक बिन्दु आयेगा इसके बाद निर्दिष्ट संख्या में जप करने पर कही सफलता के आसार बन सकेंगे।

समाज के व्यवहार और चिन्तन में कालक्रम से संभावित विकारों को देखकर ही ऋषियो ने इस मन्त्र को शाप दे रखे हैं। वस्तुतः ये शाप मन्त्र के लिए नही हमारे लिये अवरोध हैं।

कई ऐसे प्रसंग आये हैं जब कई व्यक्तियों ने बताई गई विधि से अनुष्ठान करने पर भी सफलता नही प्राप्त की तो मूल में यही गायत्री का जप निकला वे लोग सांसारिक इच्छाओं से प्रेरित होकर राजसी या तमोगुणी देवता की साधना करना चाहते थे इसलिये हम अपने लक्ष्य और पात्रता को पहचान कर इस मन्त्र का जप करें तो अधिक सफल व सार्थक रहे।

जैसा कि हम जानते हैं गायत्री एक छन्द है और भारतीय दर्शन में दर्शन ने छन्दो व रागों को भी स्वतन्त्र रूप व आकार देने का साधार प्रयत्न किया है। मल्हार, भैरवी या मालकोश राग का जो स्वरूप, समय व विन्यास बताया है। राग--रागिनियों के इस रूप को समझ कर यदि कोई इनकी स्वतंत्र रूप से उपासना करने लगे तो यह कोई अव्यावहारिक बात नही है किन्तु उसका शाब्दिक रूप और आकार ही उसकी वास्तविकता है। कोई व्यक्ति यदि भैरवी राग के वर्णित रूप की प्रतिमा बनाकर उसकी उपासना करता है तो यह उसकी इच्छा है जब कि उसकी वास्तविक उपासना उस राग के स्वरों का साधन करने मे हैं।

गायत्री भी एक छन्द है और उस छन्द की भी एक मूर्ति और आकार है। उस आकार का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही है, बल्कि उसका प्रकटीकरण उस यति में ही संभव हुआ करता हैं। गायत्री वेद माता है क्योंकि

उष्णिक, बृहती, जगती सुतल आदि छन्दों की अपेक्षा गायत्री छन्द में वेद की ऋचायें अधिक हैं। गायत्री को स्वतन्त्र देवता मानने वाले अनुष्टुप् (छन्द को) देव क्यों नहीं देख लेते और उसे पुराण देवता क्यो नहीं कहते पौराणिक वाक् मय अनुष्टुप् छन्द में ही अधिकांश लिखा गया है।

वेद ज्ञान की उदात्ततम अवस्था है और अनुभूति का उच्चतम स्तर है। वह भारत का ही नहीं समस्त मानव जाति का ज्ञानकोश है, उसकी रक्षा सुरक्षा करने के अनेक उपाय किये गये हैं जिनमें एक यह भी है कि छन्द को ही देवता मानकर उसको स्वतन्त्र रूप से स्थापित कर दिया।

अगर गायत्री स्वतन्त्र देवी होती तो गरुड गायत्री, हनुमान गायत्री, शिव गायत्री आदि विविध रूप किस प्रकार होते? इन देवताओं के लिए वर्णित मन्त्रो के देवता ये ही हैं और इनमें स्पष्ट रूप से गायत्री छन्द है। क्या हमने कहीं भी काली हनुमान, काली गरुड़, काली भैरव जैसे नाम सुने हैं? (क्योंकि ऐसा व्यावहारिक नहीं है) फिर किसी भी देवता के साथ गायत्री कैसे जोड़ दी गई हैं? वास्तविकता यह है कि गायत्री एक वैदिक छन्द है जिसका विविध देवताओं की उपासना के लिए रचित मन्त्रो में प्रयोग कर दिया गया है। गायत्री मन्त्र का देवता सविता है। गायत्री अगर देवी होती तो उसकी योगिनी, महाविद्या या अन्य देवियों में गणना की जाती पर ऐसा नहीं है।

गायत्री एक मूल छन्द है, मूल के माने यह कि इसकी लय स्वतन्त्र और स्वाभाविक है। वर्णों के ध्वनित होने की प्रक्रिया में गायत्री अनिवार्यतः आ जाता है। तंत्र शास्त्र में अनेक देवताओं का गायत्री छन्दगत रूप माना है। पाठकों की जानकारी के लिये उनका नामोल्लेख किया जा रहा है (१) ब्रह्म गायत्री (२) सरस्वती गायत्री (३) विष्णु गायत्री (४) नारायण गायत्री (५) राम गायत्री (६) लक्ष्मण गायत्री (७) हनुमान् गायत्री (८) कृष्ण गायत्री (९) गोपाल गायत्री (१०) गरुड़ गायत्री (११) शिव गायत्री (१२) रुद्र गायत्री (१३) नृसिंह गायत्री (१४) हयग्रीव गायत्री (१५) गणेश गायत्री (१६) कार्तिकेय गायत्री (१७) नन्दी गायत्री (१८) सूर्य गायत्री (१९) चन्द्र गायत्री (२०) मंगल गायत्री (२१) पृथ्वी गायत्री (२२) जल गायत्री (२३) अग्नि गायत्री (२४) वायु गायत्री (२५) आकाश

गायत्री (२६) इन्द्र गायत्री (२७) गुरु गायत्री (२८) भैरवी गायत्री (२९) बगलामुखी गायत्री (३०) महिष मर्दिनी गायत्री (३१) मातंगी गायत्री (३२) दुर्गा गायत्री (३३) जय दुर्गा गायत्री (३४) देवी गायत्री (३५) शक्ति गायत्री (३६) अन्नपूर्णा गायत्री (३७) काली गायत्री (३८) तारा गायत्री (३९) षोडशी गायत्री (४०) भुवनेश्वरी गायत्री (४१) छिन्न मस्ता गायत्री (४२) धूमावती गायत्री (४३) काम गायत्री (४४) गौरी गायत्री (४५) तुलसी गायत्री ४६ दक्षिणा मूर्ति गायत्री (४७) राधा गायत्री (४८) सीता गायत्री (४९) लक्ष्मी गायत्री (५०) परशुराम गायत्री (५१) त्वरित गायत्री।

यों गायत्री (छन्द) को देवी मूर्ति मान लेना हमारे चिन्तन के प्रतिकूल नहीं है। शाप विमोचन के लिए जो विनियोग बोला जाता है उसमें हलों (व्यंजनों) को गायत्री का बीज, स्वरों को शक्ति परमात्मा को देवता और विश्वामित्र को ऋषि कहा जाता है।

गायत्री की सात व्याहृतियां (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) सात लोकों-चेतना के उदात्त से उदात्ततर स्थिति से सूचक है। शास्त्रदृष्टा ऋषियों ने इन व्याहृतियों के भी ऋषि देवता और छन्द बतलाये हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं। ऋषिजमदग्नि, भारद्वाज, अत्रि, गौतम या भृगु, कश्यप विश्वामित्र, वशिष्ठ हैं, छन्द-गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप बृहती, पंक्ति त्रिष्टुप् जगती हैं, देवता-अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र, विश्वेदेवा हैं।

नित्य जप या पुरश्चरण में प्रत्येक मंत्र के साथ इन व्याहृतियों के जपने की आवश्यकता नहीं है। जप के पहले मुख्य रूप से इस मंत्र को तीन शापों से मुक्त किया जाता है ये तीन शाप ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र के हैं। शाप मोचन किये बिना गायत्री का जप निष्फल माना जाता है। जप से पहले हृदय (गायत्री हृदय) बाद मे तत्त्व (गायत्री तत्त्व) का पाठ करना आवश्यक होता है। जप के लिए कहा गया है कि अंगुलि के अग्रभाग से किया गया जप निष्फल होता है, माला के सुमेरु को लांघकर जो जप-किया जाता है। बिना गिनती के जो जप किया जाता है, वह निष्फल जाता है, तथा यों तो सभी प्रयोगों में किन्तु गायत्री के अनुष्ठान मे विशेषतया-

ब्रह्मचर्य, धरती पर सोना देवार्चन व पवित्र आचरण के साथ-साथ उबटन (क्रीम, पाउडर) उद्वेग, क्रोध, आलस्य, दिन में सोना (जप से समय किसी सांकेतिक भाषा में भी बोलना पैर फैलाना, स्त्रियों से बात करना, शूद्र—कर्म करते वालों—से बात करना) पान खाना, दिन मे सोना, परनिन्दा, नाच गान मे भाग लेना, कुटिलता छोड़ने पड़ते हैं।

गायत्री मंत्र के प्रत्येक अक्षर का देवता छन्द शक्ति ऋषि का निर्देश शास्त्रों में किया गया है। इस विस्तार को देखकर गायत्री के वेद माता होने पर कोई संशय नहीं रहता क्योंकि संहिता (वेदो) से जितने छन्द हैं उनमें से अधिकांश इसमे हैं। और देवताओं का भी परिगणन इसी अनुपात मे आ गया है।

वेद ज्ञान का अविकृत स्वरूप है, उसके पढ़ने से ज्ञान का निर्बल प्रकाश हमारे में भासित होता है। गायत्री का जप भी हमें पाप मुक्त अतएव निष्कल्मष किया करता है। इसके बावजूद सासारिक कामनाओं की पूर्ति के निमित्त गायत्री मंत्र का प्रयोग किया जा सकता है, इसी उद्देश्य को लेकर काम गायत्री, गरुड गायत्री, गणेश गायत्री आदि का उपदेश किया गया है। वशीकरण के लिए काम गायत्री विघ्न विनाश के लिए गणेश गायत्री लोक रंजन के लिए राम गायत्री, सर्प भय से मुक्ति के लिए गरुड गायत्री शत्रुविजय के लिए स्कन्द गायत्री आदि का निर्देश लोक हित के लिए किया गया है।

संक्षेप मे हम यह मान सकते हैं कि गायत्री एक स्वरूप है, एक स्तर है जिसे प्राप्त करके व्यक्ति उदात्त पुरुष हो सकता है तथा किसी भी भौतिक या अभौतिक कामना की सिद्धि के लिए उस स्तर की साधना की जा सकती है। एक युग रहा था—जब गायत्री जो एक सम्पूर्ण वर्ग ने अपना आराध्य बना रखा था। तंत्र शास्त्र मे गायत्री को विवेचनीय माना अवश्य है पर उसका स्थान देवी के चौदह (महा विद्या) स्वरूपों में नहीं है। पंच मकार वाली साधना पद्धति गायत्री मे संभव नही है। वैष्णव या वेद मार्गी परम्परा में गायत्री से अधिक स्वीकृति कोई स्तव नहीं है।

कर्ण पिशाचिनी

भौतिक आकांक्षाओं से पीड़ित लोग कर्ण पिशाचिनी की आराधना करने को लालायित रहते हैं। यह सिद्ध होने पर भूतकाल और वर्तमान काल की बातें बतला देती है, असाधारण परिस्थितियों में भविष्यत् को बतलाने की क्षमता भी आती है किन्तु इसके लिए अधिक श्रम और साहस की आवश्यकता रहती है। वर्तमान में चाहे विश्व के किसी भी हिस्से की बात पूछी जाय यह सही उत्तर दे देती है, एक हद तक यह व्यक्ति के अन्तःस्तल के विचारों को भी जान सकती है। किन्तु किसी के विचारों को बदले की शक्ति इसमें नही है।

लोगों को चमत्कृत करने के लिए, अपना प्रभाव जमाने के लिए और इन प्रदर्शनों के फलस्वरूप धन अर्जन के लिए कर्ण पिशाचिनी के प्रति लोग अधिक आकृष्ट होते हैं।

इसके संबध में कुछ भी लिखने से पहले एक बात स्पष्ट कर दूं कि मैं ज्ञान मार्ग में प्रवृत्त हो चुका हूं, ये आनन्दमार्गी चुटकुले हैं, इनके प्रति मुझे कोई भी दिलचस्पी नही चमत्कार जैसी चीज मेरे मे नही है और जब नही है तो दिखावा कैसे करूं ? सच यह है कि अर्थ और सुविधाओं के मामले में मैं आवश्यकता तक सोचता हूं मुझे किसी भी प्रकार की कोई सिद्धि नहीं मिली फिर भी भारतीय मन्त्रों की शक्ति का परिचय मुझे है।

ज्ञान मार्ग जिस विराट् शून्य में रमना चाहता है उसमें प्रदर्शनीय, सिद्धि या चमत्कार नाम की कोई चीज होती ही नही। गोपीनाथ कविराज और योगीराज अरविन्द के पास लोगों ने कौन-सा चमत्कार देखा। किन्तु जो उनको मिला उसके लिए कौन लालायत नही है ? ज्ञान मार्ग का यह स्वभाव है। कामनाओं से प्रेरित होकर जो प्रयोग किये जाते हैं वे ऐसे ही

रहते हैं जैसे किसी को एक शहर से दूसरे शहर जाना होता है। ऐसे लोग एक सीमित दिशा और दृश्य का अनुभव प्राप्त करते है किन्तु जिनको केवल चलना है उनके अनुभव मे सारे नगर वन, पहाड़, मैदान आ जाते हैं। ज्ञानमार्ग मे इन सारी सिद्धियो का रहस्य खुल जाता है या यों कहे कि पोल खुल जाती है और अभिरुचि समाप्त हो जाती है।

एक बार एक सज्जन आये और मुझसे उलझ पड़े, बार-बार कहने लगे तुम ऐसी पुस्तकें क्यो लिखते हो? एक मोह उपजा देते हो, मन मे वैचारिक विष भर देते हो''''''मेरा उत्तर था—आप क्यों पढ़ते हो? अपवाद स्वरूप ही ऐसे लोगों से सावका पड़ा और मेरे मन में यह आया कि चलो, इस विषय पर कुछ भी नही कहेंगे किन्तु इसके साथ ही उन पत्रों का क्या करूं जिन्होंने मेरी पूर्ण लिखित पुस्तको मे दिये गये प्रयोग किये और सफल हुए, जिन लोगो ने विश्वास पूर्वक उन प्रयोगो के बारे मे पूछा जो पुस्तको मे नही थे।

इस विशाल वर्ग की आस्था ने मुझे चुप नही रहने दिया और मैंने फिर कलम उठा ली यही सोचकर कि यदि वर्ष भर मे पांच व्यक्ति भी इन प्रयोगों मे लाभ उठाते हैं तो यह पुण्य का ही काम है। जो लोग सफल नहीं हो रहे वे भी कम-से-कम भगवान का स्मरण कर रहे हैं, अपने पाप धो रहे हैं कोई दुष्कर्म नही कर रहे, न मैं कोई घटिया उपन्यास लिखकर लोगों की वासना उभार रहा हूं।

हरेक व्यक्ति का अपना मिशन होता है। आस्तिकता का प्रसार और भारतीय संस्कृति एवं विज्ञान के प्रति लोगों की रुचि जागृत करना मेरा जीवन, का लक्ष्य है। धर्मनेता नही होना चाहता, न अपने नाम से कोई सम्प्रदाय चलाना चाहता हूं, मुझे मेरे देश वासियो से स्नेह है और जीवन व भारत के प्रति आस्था जगाना मेरा नशा है। यह व्यवसाय नहीं शौक है। वे हजारों लोग मेरे इस कथन के साक्षी हैं जिनके विस्तृत पत्रो के उत्तर मैंने एक पूरे लेख के आकार मे निःशुल्क दिये हैं अब भी दे रहा हूं, भले ही इससे मेरे निजी जीवन मे गतिरोध उत्पन्न हो जाता हो। उन अनजान लोगों के दुःख मे भागीदार होने में मुझे बड़ा सन्तोष मिलता है। आध्यात्मिक साधना करने से उनका आत्मविश्वास और मनोबल बढ़ता है।

प्रस्तुत पुस्तक उन अनेक प्रश्नों का उत्तर है जो कृपालु पाठकों ने किये हैं और उसके लिए है जो प्रश्न नही कर सके।

जिन रहस्यों को प्रकट करने में कोई बाधा नही थी उनको स्पष्ट करने में मैंने कोई संकोच नही किया किन्तु जिनको सार्वजनिक रूप से घोषित करने के हित की अपेक्षा अहित हो सकता था उनका उल्लेख या संकेत मैंने नही किया है।

प्रश्न उठता है क्या ये प्रयोग मैंने किये हैं ? मैं एक ही उत्तर देता हूं—नही क्या ये अनुष्ठान सच हैं—इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहूंगा—मैंने जीवन में पग-पग पर इनकी शक्ति को देखा है, इनको झूठ या अविश्वसनीय मानने का अपराध मैं नही कर सकता।

आदमी का जीवन बहुत छोटा होता है और वह सारे अनुष्ठान कर ले यह सभव ही नहीं फिर भी अनेकों प्रयोग मैंने किये हैं अथवा कराये हैं। कर्ण—पिशाचिनी के संबंध में सूक्ष्म और रहस्य की बातें प्राप्त करने के लिये मुझे बहुत कुछ करना पड़ा है। जिन लोगो को यह प्रयोग सिद्ध है वे कुछ भी बतलाने के लिए तैय्यार नही और मैं स्वयं करूं—यह पसन्द नही। इसलिए उन लोगों से रहस्य उगलवाने के लिए इस साधना के गूढ रहस्यों पर इस तरह विवेचन करने लगता जिससे वे समझें कि यह भी पूरा जानता है और फिर मेरे कहे में संशोधन कराने जैसी ही स्थिति रहने देता। इस तरह से इस प्रयोग के जटिल रहस्यो का स्पष्टीकरण मेरे सन्तोष तक प्राप्त करने के बाद ही लिखने का साहस कर रहा हूं।

जाने क्यों पाठकों का इस प्रयोग के प्रति इतना रुझान है और इन लोगों का इतना दबाव रहा है कि मुझे इस प्रयोग के बारे में बहुत कुछ जानना पड़ा और उसको प्रामाणिक स्तर पर पेश करने के लिए सभी पक्षों पर विचार करना पड़ा।

कर्ण पिशाचिनी के अनेक मंत्र हैं और उनकी साधना विधि में भी थोड़ा बहुत अन्तर है इस मन्त्र को सत्तर तरह से लिखने की विधि मैंने देखी है उसी तरह कर्ण पिशाचिनी में भी चालीस से अधिक मंत्र हैं। कौन-सा मंत्र किसके अनुकूल पड़ेगा इसका निर्णय कुलाकुल चक्र और मित्रारि चक्र को देखकर कर लेना चाहिए ये चक्र 'मंत्र विज्ञान' में

दिये गये हैं।

एक स्थान पर ग्रहण के दिन खाट में बैठकर बहुत कम मात्रा मे जप करने पर कर्ण पिशाचिनी सिद्ध होने की बात मैंने लिखी थी। यह मेरा निर्णय नही था शास्त्रोक्त बात थी। इस प्रयोग मे ग्रहणकाल की स्वत: पवित्र अत: मंत्र साधन के उपयुक्त समझ कर खाट को श्मशान पीठ के रूप में माना गया है किन्तु इतनी कम मात्रा मे जप करने पर सिद्धि उनको ही मिलती है जिन्होने इस संबंध में कुछ किया है। जिसने पहले कुछ भी नही किया था जो इससे विपरीत गुण वाले प्रयोग कर चुके हैं उनको इतनी संख्या मे जप करने से सफलता नही मिल सकती।

जैसा इसका नाम है वैसा ही इसका स्वरूप और स्वभाव है। स्वाभाविक है इस प्रकार के प्रयोग करने के लिए अतिरिक्त साहस की आवश्यकता होगी इसलिए साहसी और वीर व्यक्ति इस संबंध मे सोचें।

कई लोगों ने शंका की थी कि व्यक्ति की मृत्यु के समय ऐसी साधनायें कष्ट कर रहती हैं, ऐसी बात नही है। पिशाचवर्गी होने के कारण इनमे क्रूरता तो रहती ही है, दूसरी बात यह भी है कि इनके अति संपर्क से व्यक्ति के स्वभाव में पैशाचिकता प्रकट होने लगती है। हालांकि मंत्र के कारण वचन बद्ध होकर ये हमारे काम तक सीमित रहते हैं फिर भी इनके नैसर्पिकागुण लुप्त नही होते और हम उनसे प्रभावित होते ही हैं।

पिशाचिनी होने के कारण इसकी साधना घर मे नही करनी चाहिए। श्मशान एकान्त वन प्रान्त और शिव मंदिर इस साधना के उपयुक्त स्थल हैं। घर करने से सफलता देर मे मिलती है और घर का वातावरण दूषित होता है। सिद्ध होने के बाद तो यह नियंत्रित हो जाती है इसलिए दूषित नही कर पाती किन्तु सिद्ध होने से पहले स्वतंत्र रहती है।

इस तीन रूपों मे माना जा सकता है मां, बहन और पत्नी। मां और बहन के रूप मे मानने पर इसमें इतनी शक्ति नही आती पत्नी के रूप मे मानने पर इसकी सामर्थ्य पूर्ण रूप से प्रकट होती है। किन्तु अपने स्वभाव के अनुसार यह पत्नी सुख मे बाधा पहुंचाती है। हां, व्यभिचारी बनाकर सैंपयिक सुख मे कमी नही आने देती पर पत्नी के नाम से जो व्यक्ति हमारे घर में है उसे कष्ट देती है। आवेश या दिखने जैसे कष्ट नही बल्कि

उसके स्वास्थ्य मे ह्रास और चिन्तायें उत्पन्न करती है। मां और बहन रूप में मानने पर इनके सुखो मे बाधा पहुंचाती है।

एक कर्ण पिशाचिनी साधक का अनुभव

तंत्र के पारस्परिक ग्रन्थों में काल के आवरण को भेद कर अतीत व भविष्य को देखने के अनेक प्रयोग बताये गये हैं हाजरात, वार्ताली, चक्रेश्वरी, यक्षिणी, कर्ण पिशाचिनी आदि अनेक मंत्र हैं, जो भूत-भविष्यत् का ज्ञान करने की क्षमता प्रदान करते हैं। ये स्वप्न दृष्टि और शब्द के माध्यम से काम करते हैं। जैसा इनका नाम है वैसा इनका स्वरूप और शक्ति है। इनको सिद्ध करने मे कोई अधिक कष्ट या विशेष शुद्धि की आवश्यकता नहीं रहती।

बहुत सभव है—हम मे से अधिकांश ने ऐसे व्यक्तियो को देखा हो जो हमारे विचारों को ही पढ-सुन लेते हों, वे हमे देखते ही हमारे प्रश्नों को कागज पर लिखकर रख लेते हों, हमारे परिवार की सारी पृष्ठभूमि नामोल्लेख करके बतला देते हो, और तो और उन्होंने अपने कागज में पाच प्रश्न लिखे हो और आपने तीन ही प्रश्न सोचे हो शेष दो प्रश्न आप बाद में सोचें और आपको आश्चर्य हो कि उस व्यक्ति ने आपके प्रश्न पहले ही कैसे लिख दिये ! हमारी सामान्य बुद्धि के लिए यह बहुत बड़ा चमत्कार है किन्तु तंत्र मार्ग में यह निकृष्ट और साधारण-सी पैशाचिक साधना है। पूछने पर ऐसे व्यक्ति ज्योतिष की गणित, किसी देवता की कृपा या अपने आपको अंतर्द्रष्टा होने की बात कहेंगे किन्तु ऐसा है नहीं उनके पास पिशाचिनी है।

जिन लोगों के पास यह शक्ति है वे लोगों को चमत्कृत करके अपना प्रभाव जमा सकते हैं, उनके पास पैसे की कमी नही रहती। किन्तु उनका जीवन सुख मय नही रहता—इसके कई कारण हैं, पहली बात तो यह है कि पैशाचिक साधना होने के कारण व्यक्ति पिशाच बुद्धि और चरित्र वाला हो जाता है। स्नानादि करके स्वच्छ और दिव्य रहना उसके स्वभाव मे नहीं रहता। यों अपने को प्रदर्शित करने या पोश लोगो की संगति मे बैठने के कारण वे राजसी वैभव और कपड़ों का शौक कर लेते हों। किन्तु यह उनका धर्म नही होता। दूसरी बात यह कि ऐसे लोगो में असत्य भाषण की आदत भी पड़ जाती है। शास्त्र कहते हैं—"सत्य संधा: देवा. असत्य सधा: राक्षसा:" इसलिए राक्षसी साधना के प्रभाववश वे असत्य बोलने लगें तो कोई आश्चर्य नही।

कर्ण पिशाचिनी की स्वयं की शक्ति होती है, इसका स्वयं का वातावरण होता है। वर्तमान मे इसकी अव्याहत गति है, भूतकाल मे भी यह चलती है किन्तु भविष्यत् में गमन करने के लिए इसे पूरी सामर्थ्य मिलनी चाहिए और यह सामर्थ्य साधक स्वयं प्रकट करना है। समय के पार देखने के लिए दिव्य दृष्टि चाहिए और दिव्य दृष्टि मिलती है मन की निर्मलता से मन पर छाये मैल उसकी अनुभव शक्ति को मन्द कर देते हैं हमारे आस-पास के आग्रहो मे मन की शक्ति बिखरी-बिखरी रहती है। यद्यपि कर्ण पिशाचिनी हमारी अर्जित शक्ति है और वह मशीन की तरह अथक भाव से हमारा काम करती रहती है फिर भी वह हमारी नैसर्गिक शक्ति नही है, वह हमसे भिन्न है, मानसिक निर्मलता से जो कुछ भी मिलता है वह हमारे मन का हो जाता है। साधना के उच्च स्तर मे जाने पर ऐसी शक्ति स्वत: प्रस्फुटित हो जाती है और उसके साथ ही उसमे इतनी शक्ति आ जाती है कि वह अनिष्ट निवारण भी कर सकता है।

अब प्रस्तुत है एक कर्ण पिशाचिनी की साधना करने वाले का अनुभव। शंकर समझता है आज की दुनिया में चमत्कार को नमस्कार करते हैं। साधारण आदमी की तरह जीने से क्या लाभ, कुछ विशेष किया जाय, कुछ अतिरिक्त पाया जाय। कर्ण पिशाचिनी उसे सरल नजर आती

है। उसकी साधना विधि समझकर अनुकूल मुहूर्त में साधना प्रारंभ कर देता है। पांचवे दिन ठीक दो पहर में जब वह विश्राम कर रहा होता है तो धर्म निद्रित अवस्था मे उसे एक स्त्री नजर आती है स्त्री कोई घोर रूपा नही है किन्तु इतनी सौम्य और सुन्दर भी नही है कि उसकी तरफ देखता ही रह जाय साधारण श्यामल शरीर, मध्यम कद, अलंकार रहित किन्तु उसके ललाट में आडा एक नेत्र जिसमें से तेज रोशनी-सी निकलती लगती है और उसकी तरफ देखा नही जा सकता। उसके पीछे बड़ी भारी फौज रहती है जिसमें वे सारे लोग मौजूद हैं जिनको शंकर ने देखा था और मर गये थे। ऐसे अनेकों लोग हैं। उस पिशाचिनी ने शंकर के मस्तक पर धर रखा है किन्तु वह इतना भयभीत हो जाता है कि कुछ बोलना तो दूर आंख मूद कर देवी कवच का पाठ करने लगता है और उठ जाता है।

क्षण भर मे सारा दृश्य लुप्त हो जाता है। प्रयोग अधूरा रह जाता है। अगर शंकर भयभीत न होता और उससे बात करता तो कर्ण पिशाचिनी उसके साथ सदा के लिए आ जाती। यह साधना पिशाच वर्ग की है इसलिए इसे वचन बद्ध किया जाता है। यद्यपि यह मूर्तिमान रूप मे साथ नही रहती फिर भी इसे रहने के लिए एक नियत रूप और आकार देना ही पडता है और एक बार जिस रूप मे रहने के लिए कह दिया उस व्यक्ति के घर में वह चीज रह नही सकेगी। माना हमने उसे चिड़िया के रूप मे रहने के लिए वचन दे दिया तो अब हमारे घर मे चिड़िया जैसी चीज रह नहीं सकेगी। पत्नी के रूप में यह सबसे अधिक शक्तिशाली और आज्ञाकारी रहती है पर इस रूप मे रखने पर वैध पत्नी का सुख नहीं मिलने का।

इसकी साधना करते समय आसन को बिछाये ही रहना पड़ता है। ऐसा नही कि काम करते समय आसन बिछा दिया और फिर समेटकर रख दिया। मंत्र जप करते समय ग्वार पाठा सदा हाथ में रखना पड़ता है। ग्वार पठे के प्रभाव मे यह उग्र रूप में नहीं आती। ग्वार पाठे को संस्कृत मे कुमारी कहते हैं, आयुर्वेद की दृष्टि से यह बात दोष को कम करती है। इन दोनों दृष्टियों से यह ग्वार पाठा तमोगुण की उग्रता कम करने वाला

हता है। यह प्रत्येक तमोगुणों या पैशाचिक योनियों का गुण है कि वे ाधना करते समय दिये गये वचन का पालन करने के लिए मजबूर हैं। स प्रकार का वचन भंग करना उनकी व्यवस्था में दण्डनीय होता है फिर त्र बल से ये लोक बरवस खींच कर लाये जाते हैं, ये प्रसन्न अपनी इच्छा े नही होते। भूत साधना से वश में आया प्रेत अपने आप मे सुखी और सन्न नही होता क्योकि उसको गुलाम बनाया जाता है किन्तु साधना की क्ति और मंत्र के प्रभाव के आगे वे विवश हैं।

कर्ण पिशाचिनी की साधना करते समय सभी को इसी प्रकार के दृश्य दिखाई दें यह आवश्यक नही, किसी को भिन्न प्रकार के आभास भी हो सकते हैं और किसी को कोई रूप या आकार दिखाई न देकर केवल कान मे ही सुनाई पड़ सकता है और स्पष्ट आवाज आने से पहले भयंकर गर्जन या चिंघाड़ सुनाई दे सकती है इनसे डरे बिना जो सुने उसका उत्तर दे देना चाहिए।

गुरु

गुरु एक ऐसा सम्बोधन है जिसका महत्व भावनात्मक स्तर पर ही आंका जा सकता है। भौतिक दृष्टि से गुरु और शिष्य मे कोई अन्तर नही होता। जो मानवी देह गुरु की है वही शिष्य की सम्भव है। गुरु की देह और आकृति शिष्य की तुलना में बहुत कम आकर्षक हो या गुरु की अवस्था शिष्य से कम हो किन्तु ये आयाम गुरु के महत्व और रूप को कम नहीं कर पाते।

विश्व के श्रेष्ठतम गुरु अरस्तू, सुकरात, चाणक्य अष्टावक्र जैसे देह व व्यक्तित्व की दृष्टि से कुरूप ही थे किन्तु उनके भीतर जो अलौकिक सौन्दर्य और उदात्त रूप था, उसके सामने सुन्दरतम व्यक्ति भी नगण्य

रहा था। अवस्था जैसी चीज के लिए भारतीय दृष्टिकोण स्पष्ट कहता है—

"न ज्ञान वृद्धेषु वयः समीक्ष्यते"

ज्ञान मे बड़े लोगो की अवस्था का विचार नही किया जाता। असल मे गुरु ज्ञान का आवरण हटाकर ज्ञान की शलाका से हमारे अन्तश्चक्षु खोलता है।

मन्त्र शास्त्र मे गुरु और शिष्य दोनों की शर्तें और व्यवस्थायें दी गई हैं। गुरु की गरिमा को पहचानने के लिए और शिष्य की पात्रता को परखने के लिए अनेक गुणों और दोषो की चर्चा की गई है। व्यवहार मे विश्व के सारे कार्य नैसर्गिक रूप से होते हैं, हम भी वृद्धि और विनाश के क्रम में स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए हैं और इन स्तरों को पार करते जा रहे हैं किन्तु इन प्राकृतिक अवस्थाओं और उद्वेगों के अलावा जो कुछ भी हम करते हैं वे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप मे किसी से सीख कर ही करते हैं और जिससे सीखते हैं वही हमारा गुरु है यह भिन्न बात है कि हम उसे गुरु के रूप मे मानते हैं या नही। दत्तात्रेय हमारे इतिहास मे ऐसे प्रतीक हैं जिन्होने प्रत्येक उस व्यक्ति को गुरु माना है जिससे उन्होंने कुछ भी सीखा है।

हमारे यहा ईश्वर व्यक्ति के बीच की कड़ी को गुरु के रूप मे माना गया है। भारतीय चिन्तन मे ईश्वर को इतना महिमामय बतलाया गया है कि उसके वैभव से हम आतंकित हो सकते हैं और उसकी सम्पूर्णता के सामने अपने आपको नगण्य ही समझ सकते हैं। श्रद्धातिरेक के कारण यह हीन भाव हमे अनुभव न हो किन्तु तटस्थ वृत्ति से देखने पर यह तथ्य प्रकट होता ही है। इसके विपरीत गुरु हमारे लिए सुलभ है, हम और गुरु एक ही धरातल पर खड़े रह सकते हैं। इस गुण के कारण ही गुरु हमारे लिए ईश्वर से और अधिक पूज्य और प्रिय है।

असल मे ईश्वर नाम की सत्ता को हम प्राप्त नही कर सकते खासकर हमारे अस्तित्व को भिन्न रूप से रखते हुए। वैष्णव दर्शन के अनुसार समस्त प्रकार के भेदों का नाश किए बिना ईश्वर को प्राप्त नही किया जा सकता और भेदनाश की वह स्थिति हमारे मे छुपे विराट् अस्तित्व को पाने

ही है, स्वयं के ईश्वर बन जाने की है। इस खाई को लांघने के लिए सरलतम विधि को बतलाने वाले गुरु होते हैं। ऋषि के रूप में हम जिनको जानते हैं वे भी गुरु ही हैं।

हमें जीवन मे तीन प्रकार के गुरु मिलते हैं। शिक्षा गुरु, विद्या गुरु और दीक्षा गुरु। शिक्षा गुरु के रूप मे हम हमारी मां को सबसे पहले जानते हैं। वह हमें उठना, बैठना, चलना, बोलना, खाना, पहनना सिखलाती है। प्रकृति के रूप में अदृश्य शक्ति भी हमारी शिक्षा गुरु है क्योंकि वह अलक्षित रूप में बुद्धि स्वरूप होकर हमे ज्ञान कराती है। सिखलाने वाले हमे जीवन भर मिलते रहते हैं। किन्तु उन्हें हम गुरु की श्रेणी में नही गिनते।

विद्या गुरु हमें अक्षर ज्ञान कराते हैं। लिपि के प्रचार के बाद हमें यह सुविधा मिल गई है कि अक्षर ज्ञान करने के बाद हम क्रमशः ज्ञानार्जन करते रह सकते हैं। विद्यालयो में जो कुछ भी सिखाया जाता है वह भाषा मे भाषागत विकास ही होता है, अनुभूति व्यक्ति की स्वयं संवेदनशीलता, वातावरण और अवस्था किंवा मानसिक विकास पर आधारित तथ्य है। शैली यदि स्वय की होती है तो उसमे मौलिकता रहा करती है अन्यथा प्रभावित और अनुकरण जनित शैली मे मौलिकता व प्रभाव नही आया करता। पूर्व काल में आचार्य और उपाध्याय जैसे शब्द इन्ही विधियो के सूचक थे।

दीक्षा गुरु मेरी दृष्टि मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हुआ करता है। शिक्षा गुरु लोगों को सिखाता है तो उसका ज्ञान बढता है किन्तु दीक्षा गुरु किसी को दीक्षित करता है या मन्त्रोपदेश करता है तो उसकी स्वयं की तपस्या शिष्य में अवतरित करता है जिससे उसकी अर्जित तपस्या मे कमी आती है। जिन लोगों के पास स्वयं की तपस्या क्या हो और वे मन्त्रोपदेश करें तो क्षति पूर्ति के लिए पुरश्चरण करना पडता है। हमारे यहा मन्त्रोपदेश करने के लिए योग्य व्यक्तियों के लक्षण मे एक लक्षण यह भी है कि उस मन्त्र की साधना उनके यहा पारिवारिक व परम्परागत रूप से चलती आ रही हो।

मन्त्रोपदेश करना बड़ा नाजुक काम है। मेरे विचार से यह अपनी

कन्या के विवाह करने जितना महत्त्वपूर्ण और विचारणीय होता है। जैसे हम हमारी पुत्री का विवाह करने से पूर्व वर के वंश परम्परा, गोत्र, योग्यता, स्वास्थ्य, चरित्र, क्षमता, व्यक्तित्व आदि पक्षों पर गम्भीरता से विचार करते हैं उतना ही विचार मन्त्रोपदेश करने से पहले उस व्यक्ति के सम्बन्ध मे किया जाता है जिसे मन्त्र देना होता है।

कई सिद्ध मन्त्रों के लिए मन्त्र शास्त्र बड़ा आग्रह करते हुए कहता है कि केवल गुरु भक्ति को ही देना चाहिए, चाहे जिस व्यक्ति को नही।

गुरु भक्ताय दातव्यं न देय यस्य कस्यचित् असल में मन्त्र देना और लेना भावनात्मक जगत् की बात है। जब तक दोनों व्यक्तियों में विश्वास और आत्मीयता न हो जाय तब तक मन्त्र, मन्त्र को देना या लेना कोई अर्थ नही रखता।

'मन्त्र विज्ञान' की भूमिका में मैंने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया था। "गुरु बनने की योग्यता मुझमे नही है" इसके बाद भी अनेक लोगों के आग्रह आते रहे। मुझे देखे विना ही, मुझसे मिले बिना ही वे एकलव्य की सी आस्था का प्रदर्शन करते रहे। किन्तु मैं मन्त्रोपदेश की स्थिति से बचता रहा। टालता रहा। मेरी समझ से पूर्ण परिचय नही मिल पाता इसलिए व्यक्तिगत रूप में जाने बिना कोई निर्णय लेना मेरे लिए कठिन था।

टालना मेरे लिए आवश्यक हो जाता है। इससे सामने वाले व्यक्ति के धैर्य की परीक्षा हो जाती है। राजा जनक से मिलने शुकदेव आये— राजा ने एक सप्ताह तक उनको द्वार पर ही प्रतीक्षा करने को कहा फिर द्वार के भीतर, फिर अन्तःपुर में इस तरह महीनों गुजर गये फिर जनक आये तो शुकदेव के चरणों में गिर गये।

यह उपाख्यान मेरे लिए मार्ग दर्शक दीप है। कई लोग मेरी इस बात को ग्रहण नहीं कर पाते और मेरे वादो का कटघरा बनाकर मुझसे सफाई प्राप्त करने लगते हैं। मैं उनसे हाथ जोड़कर क्षमा मांग लेता हूं। मेरी दृष्टि में जो परीक्षा की पहली शर्त थी वे उसी मे असफल हो गये। खुशामद के बतौर किये जाने वाले विनम्र व्यवहार में भी वास्तविकता नहीं होती इसलिए वह भी व्यक्ति की पात्रता में एक तरह का दोष माना जाता है। हां, राय देने जैसी बात मे मुझे कोई आपत्ति नही और प्रति मास दो

सौ से अधिक पत्रों का उत्तर निःशुल्क देता रहा हूं।

जिन मन्त्रों के लिए पद-पद पर यह शर्त लगाई गई है कि इसकी रक्षा उसी तरह करनी चाहिए जिस तरह स्त्रियां अपनी योनि की करती हैं, उन मन्त्रों का उपदेश करना जितना विश्वास और पवित्रता का कार्य है, उतना ही नुकसान देह और खतरनाक भी। नुकसानदेह इसलिए कि इससे देने वाले की शक्ति में कमी आती है और खतरनाक इसलिए कि जिस व्यक्ति को दिया जा रहा है, यह उसे पूरे सम्मान और नियम से रखता रहेगा या नहीं, वह उसका दुरुपयोग तो नहीं करेगा, ऐसी अनेक बातें हैं जिन पर विचार करना ही पड़ता है।

शिक्षा गुरु पर उतना जिम्मा नहीं आता इसलिए राय देने में या कोई बात समझ में न आ रही हो तो उसे स्पष्ट करने में कोई विशेष बात नहीं लगती। जिन व्यक्तियों के प्रति मन में विश्वास जम जाता है या मन में प्रेरणा हो जाती है, उनको देना ही पडता है, पर ऐसा अपवाद रूप में ही होता है।

मैं उस पीढ़ी को देख चुका हूं जो शिक्षा गुरु को भी परमात्मा से अधिक पूज्य मानते थे। मुझे जब कभी मेरे गुरु की धोती धोने का अवसर मिल जाता था उस दिन सारे दिन मेरे मन में अद्भुत उल्लास उमगता रहता था। कहां हैं अब ऐसे लोग? आज का छात्र गुरुओं पर अपने को स्थापित करना चाहता है, दीक्षा गुरु की तो बात ही क्या? मेरा अपना निर्णय और विचार है कि दीक्षा गुरु जो कुछ भी चाहे उसे चाहे जिस विधि में प्रसन्न रखना पड़े तो घाटे का सौदा नहीं है। उसकी प्रसन्नता ही हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि और सार्थकता है। मुझे जीवन में जो कुछ मिला है, गुरु की कृपा है, उनके स्मरणमात्र से मेरे रोमांच हो आता है। यह गुरु भक्ति और आस्था ही मुझे आत्म साक्षात्कार के दुस्तर मार्ग में प्रकाश दिखाती है, बल का संचार करती है।

मंत्र साधन तकनीकी विषय है, इसे मात्र पुस्तकों के सहारे नहीं समझा जा सकता। हां, जो लोग इस विषय में थोड़ा बहुत जानते हैं उनके लिए पुस्तकें सहायक हो सकती हैं किंतु जो उग्र शक्ति वाले मंत्र हैं उनको गुरु मुख से सुन लेना अधिक आवश्यक और उपयोगी रहता है। कई

मत्र तो इस प्रकार के होते हैं कि उनके जाप से शक्ति का तीव्र विस्फोट होता है और साधक उसे सहन नही कर पाता इसलिए ऐसे मंत्रो के पहले सहायक मंत्रों का जप करने से विपरीत परिस्थितिया हानि नही करती अन्यथा कई लोग ऐसे होते हैं जो विक्षिप्त हो जाते हैं, उनकी बुद्धि जड हो जाती है, सफलता के बजाय अनपेक्षित विपत्ति में फंस जाते हैं। ऐसे प्रमुख और तुरन्त सिद्धि देने वाले मत्रों के पहले कवच का पाठ करने की परम्परा हानिकर स्थितियो से बचने के लिए ही रखी गई है। जिनमे कवच नही मिलते उन मत्रो के साधन मे अन्य कवच की वैकल्पिक-व्यवस्था यें पूरी करनी पड़ती हैं।

इनके अलावा कई प्रयोग ऐसे हैं जिनकी शक्ति एवं सामर्थ्य को देखकर कीलित कर दिया गया है। इस कीलन को हटाने (उत्कीलन) का विधान रचने पर ही मंत्र की शक्ति प्रकट होती है। राम रक्षा जैसे जठोपयोगी स्रोत भी कीलित हैं इसलिए उत्कीलन करने के बाद इनका अनुष्ठान निश्चित रूप से सिद्धि प्रद होता है।

कीलन के अलावा कई प्रयोग ऐसे है जिन पर ऋषि देवता अथवा दूसरे विशिष्ट तप पूत व्यक्तियों के शाप रहते हैं। शाप के कारण मंत्र उसी तरह रहता है जैसे भाप लगा धुंधला शीशा रहता है, इसलिए शाप विमोचन करना आवश्यक हो जाता है। मेरे विचार से गायत्री मंत्र ऐसा है जिस पर अनेक ऋषियो का शाप है, दुर्गा सप्तशती पर भी है इसलिए सप्तशती के पाठ के पहले शाप विमोचन का पाठ करना आवश्यक हो जाता है।

ऐसी अनेक सूक्ष्म बातें हैं जिनका सम्पूर्ण विवेचन एक पुस्तक में नही हो सकता और इन रहस्यों को समझने के लिए किसी योग्य व्यक्ति का मार्ग दर्शन आवश्यक हो जाता है।

स्रोत्र पाठो का जहां तक प्रश्न है वे विद्या गुरु की साक्षी से किए जा सकते हैं। हमारा उच्चारण शुद्ध और परिमार्जित है, सदाचार से रह रहे हैं तो पाठ या स्रोत्र शैली वाले अनुष्ठान् कर सकते हैं इन अनुष्ठानो में यह शर्त है कि हम पाठ करते समय उसके अर्थ पर केन्द्रित रहे अर्थात् स्रोत पाठ वाले प्रयोगों मे यह एक प्रकार की प्रच्छन्न मर्यादा है कि हम उसका

अर्थ समझ रहे हों अथवा समझने की योग्यता रखते हों। इसके दो लाभ हैं —एक यह कि हम यति विरामादि को सावधानी से बोल सकते है और अर्थ बोधक रूप में पाठ कर सकते हैं। दूसरा यह कि इससे हमारा मन केन्द्रित हो जाता है।

वे मंत्र जो वाक्य शैली मे हैं जैसे गायत्री मंत्र उनके जप मे भी अर्थ ग्रहण करने की शर्त है किन्तु जो बीज मत्र है, जिनका वाक्यगत तारतम्य नही होता उनका अर्थ भी सामान्यतया भाषा गत व्यवहार की तरह नही रहता इसलिए उनका जप मनोमय होकर किया जाता है।

भगवान् राम, हनुमान, शकर आदि के नाम स्मरण मे किसी गुरु की आवश्यकता नही होती। इनके जप मे शक्ति का प्रकटीकरण मन्दगति से होता है इसलिए इनमें किसी प्रकार की त्रुटि या विक्षेप होने पर भी कोई अहित नही होता। इन देवताओं को ही गुरु मानकर इनके प्रयोग किये जा सकते हैं। जो लोग सदाचारी हैं और इस विषय को समझते हैं वे पुस्तकों को ही प्रमाण मानकर चल सकते हैं। आत्म कल्याण के लिए जपने वाले मंत्र का किसी से उपदेश लिए बिना भी प्रयोग किया जा सकता है। देवताओं मे जिनको सौम्य माना गया है, उनके अनुष्ठान भी बिना गुरु के किए जा सकते हैं।

कई सम्प्रदाय इस तरह के हैं जिनमे गुरु के सिवा किसी को कुछ माना ही नही गया है। गुरु की महिमा से मैं परिचित हूं और उसकी अनिवार्यता का पक्षपाती भी किन्तु ऐसे लोग कहां और कितने हैं, जो गुरु की परिभाषा पर खरे उतरते है। शास्त्रों मे गुरु के लिए भी मर्यादायें बताई गई हैं। हम व्यवहार मे भी देखते हैं कि जिस व्यक्ति का अपने विषय पर पूर्ण अधिकार हो वही गुरु के योग्य आदर का पात्र होता है। गुरु का अर्थ होता है भारी और भारी वस्तु में पोल या खोखलापन नही होता।

वे लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिनको गुरु मिलते हैं। गुरु की पहचानने लायक हमारी दृष्टि नही होती हम हमारे आयामों से गुरु का मूल्यांकन करते हैं और इसमे प्रायः वह भूल जाते हैं कि गुरु जैसे व्यक्ति को पहचानने की शक्ति हमारे में नही है। परिणाम यह होता है कि श्रेष्ठ व्यक्ति को भी हम नजर अन्दाज कर जाते हैं। मैंने कई लोगों को ऐसों

को देखा है जो गोपीनाथ कविराज और मां आनन्दमयी को भी अपने चश्मे से देखकर आये थे और उनमें गुरु जैसी बात उनको नही दिखी थी। आक का पेड़ वसन्त को नही माने तो उसको क्या गलती है! वसन्त मे उसे नए पत्ते नही मिलते यह उसकी देह प्रकृति का दोष है ऐसे ही यदि वे लोग भी ऐसे तीर्थों को नही पहचान पायें तो दोष उनका नही उनके भाग्य, संस्कार और विवेक का है।

एक बात अवश्य ध्यान में रखनी है कि गुरु की शरणागति के बाद भी करना सब हमको ही पड़ता है। जो लोग आत्म साक्षात्कार करना चाहते हैं। उनको भी सब कुछ स्वयं को करना पड़ता है। गुरु के मार्ग दर्शन में वे भटकते नही, उनकी गति मन्द नही पडती अन्यथा साधना का मार्ग खुद को ही चलकर पार करना पड़ता है। भगवान् राम और कृष्ण जैसे अवतारों को भी व्यवहार और विद्या की शिक्षा गुरु से ग्रहण करनी पड़ी थी। इन कथाओं के माध्यम से यही समझाया गया है कि देह और जीवन की अपनी-अपनी शर्ते हैं और इन मर्यादाओं का अतिक्रमण नही किया जाता। भौतिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले मन्त्रानुष्ठान में भी व्यक्ति को स्वयं को तपना पड़ता है। हमारे यहां (इन्डीजूअलिटि) व्यक्तिवाद को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति एवं क्षमता से स्वय परिचित होना पड़ता है।

यहां समझने लायक बात यह है कि हम गुरु को कितना पहचान पाते हैं और हम उससे कितना प्राप्त कर सकते हैं? गुरु तो सागर है किन्तु हम यदि एक लोटे या बाल्टी जितने ही हैं तो इतना ही ग्रहण कर पायेंगे। गुरु देना भी नही चाहता है और हम लेना भी चाहते हैं किन्तु हमारे में क्षमता नही है तो गुरु की सागर की सी विशालता भी हमारे लिए लोटे और बाल्टी में ही सीमित हो जाएगी।

वास्तविकता यह है कि गुरु के माध्यम से हम हमारी शक्तियों को पहचाना करते हैं, गुरु के प्रति हमारी आस्था जितनी दृढ़ निश्छल होगी उतनी ही हमारी गति होगी। सगुणोपासना से अधिक सर्वांगीण रहती है यह आस्था। गुरु हमारे चेतना केन्द्र को दीपित करके आत्म-दर्शन की

भूमिका बनाया करता है।

यों आत्म-दर्शन जैसी स्थिति मे पहुंचाना गुरु की सामर्थ्य से परे नही होता किन्तु वह स्थिति व्यक्ति की स्वार्जित नही होती, इसलिए स्थायी नही रहती, त्रिशंकु का उपाख्यान हमे यही बात बतलाता है कि गुरु की शक्ति जो चाहे सो कर सकती है, किन्तु व्यावहारिक बात यही है कि उनके आशीर्वाद से हम अपने आप मे प्राप्त करें।

मुसलमानी या साबर मंत्रों मे केवल वार और समय की सावधानी रखनी पड़ती है इससे अधिक नही। साबर शनि और मंगल को और मुसल्मानी जुम्मा या जुम्मेरात को महत्व देते हैं, दिन के बाद समय का ध्यान रखने की भी बात आती है नक्षत्र और करण या योग जैसी चीजों पर साबर तंत्र और मुसल्मानी पद्धति पर विचार नहीं करती।

समय का यह ध्यान ही मुहूर्त कहलाता है। मुहूर्त का प्रत्यक्ष में या तात्कालिक प्रभाव नही दिखता बल्कि वह भविष्यत् का सूचक होता है। ज्योतिष के जातक गोचर और मुहूर्त तीनो ही वर्तमान को आधार मानकर उसके फलित की मीमांसा करते हैं। हम हमारे दैनिक जीवन में भी समय के इस महत्व को अर्थात् ज्योतिष की उपयोगिता को देखते हैं किन्तु उस पर ज्योतिषीय दृष्टि से विचार नही करते। माना हमारे घर से रेलगाड़ी का स्टेशन दस मिनट की दूरी पर है तो दस मिनट पहले चल देना मुहूर्त है किसान के अनाज बोने का समय भी मुहूर्त है तो हमारे सोने और उठने का भी मुहूर्त है। अर्थात् जो काम करने के लिए समय नियत किया जाय वही मुहूर्त होगा। नियत करने के आयाम अलग-अलग हो सकते हैं। जयोतिष की पारिभाषिक शब्दावली में मुहूर्त एक कालखण्ड को कहते हैं जो क्षण भर

से लेकर घण्टे दो घण्टे तक वर्तमान रहता है।

मन्त्र साधना में दो तरह ज्योतिष का उपयोग रहता है। मंत्र किस तरह का है, मंत्र का प्रयोजन किस प्रकार का है, मन्त्र साधक किस श्रेणी का है, उसकी कुण्डली के आधार पर वह किस प्रकृति का है। साधक सत्वगुणी है और मंत्र तमोगुणी है तो दोनों का तालमेल नहीं बैठता, इससे विपरीत साधक तामसी प्रकृति का है और मंत्र सत्वगुण प्रधान है तो भी दोनों में सामंजस्य देर से बैठेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसी स्थितियों में सिद्धि नहीं मिलेगी, सिद्धि तो मिलेगी ही क्योंकि वह कर्म का फल है, किन्तु विलंब होगा। जो लोग तमोगुणी प्रकृति के हैं उनको सात्विक साधना में अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा उनके बजाय जो सत्वगुणी हैं और तमोगुणी साधना कर रहे हैं। रजोगुणी प्रकृति के लोगों को सात्विक या तामसी सिद्धियां जल्द मिल जाती हैं। रजोगुण दोनों (तम और सत्व) गुणों का मध्यवर्ती है।

मन्त्र साधना में रिपुभाव और मित्र भाव देखने के पीछे यही ज्योतिष धारणा है। किसी कार्य विशेष के लिए की जाने वाली साधना में यदि बीज मन्त्रों का प्रयोग किया जा रहा हो और उस मंत्र का आद्य अक्षर साधक से रिपुभाव रखने वाला हो तो उन बीज मन्त्रों में विपर्यय (आगे पीछे) कर देने की व्यवस्था हमारे शास्त्रों में है।

साबर मन्त्रों में यह विचार नहीं किया जाता। शास्त्रीय मंत्रों में स्वाभाविक उच्चत:, शुद्धता और संस्कार सम्पन्नता रहती है शाबर में जाति, वर्ण या सम्प्रदाय का विचार नहीं किया जाता। ये ग्रामीण शैली के असंस्कृत मन्त्र हैं जो केवल गुरु कृपा और विश्वास के आधार पर कार्य करते हैं। जिस प्रकार ग्राम्य जनों के जीवन में किसी संस्कार और शिष्टता का ध्यान नहीं रखा जाता उसी तरह उन मन्त्रों में भी केवल क्रिया प्रधान है: ग्रामीण जन में जोश और ताकत रहती है और वे अपने भौतिक बल से काम करते हैं, यही स्थिति साबर पद्धति की है। साबर मंत्रों के देवता पीर, नाथ, हनुमान, भैरव, क्षेत्रफल आदि हैं और ये जोश-खरोश एवं शक्ति के प्रतीक हैं।

नैमित्तिक कार्य के लिये किसी मन्त्र की साधना करना एक बात है और

इष्ट के रूप में यावज्जीवन मानते रहना दूसरी बात। कई बार जो लोग जन्म से तमोगुणी होते हैं वे हनुमान की उपासना करें हनुमान को इष्ट मानें तो उनको अपने इष्ट से एक रूप ही रहने के लिए कठोर प्रयत्न करना पड़ेगा। जो तमोगुणी है, उसे सरस्वती की साधना करने में अधिक श्रम करना होगा। सरस्वती का उपासक डाकू नहीं होता और यक्षिणी का साधक आत्मज्ञ नहीं होता।

किसी व्यक्ति की प्रकृति का निश्चय करने के लिए उसकी कुण्डली ही एकमात्र आधार रहती है। कुण्डली से यह निश्चय हो जाता है कि व्यक्ति इस जन्म में किस प्रकार के संस्कार लाया है। ज्योतिष जानने वाले लोग इस तथ्य का बड़ी सरलता से विश्लेषण कर लेते है। ज्योतिष में विशेष गति न रखने वाले भी साधारण मूल्यांकन कर सकते है। यह हम जानते हैं कि लग्न का हमारे जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव रहता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि हमारी प्रवृत्तियों और धारणाओं की सूचना का केन्द्रक लग्न रहा करता है।

साधना के सम्बन्ध मे सूक्ष्म विवेचन करने के लिए पांचवा, नौवां और दसवा स्थान क्रमिक रूप से विचारणीय रहते हैं। पांचवा स्थान विद्या, भक्ति, अनायास किसी वस्तु की प्राप्ति के बारे में ज्ञान कराता है किन्तु नवां स्थान त्रिकोण के संयोग मे लाने के कारण तथा ईश्वर साक्षात् या मुक्ति लाभ, धर्म, विनय शीलता आदि का सूचक होने के कारण और दसवां ऐश्वर्य, कर्म, यश आदि बातों का सूचक होने के कारण विचारणीय होता है। पांचवां, नौवां स्थान इस बात से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं। कर्क राशि वालों के नौवें स्थान में मीन राशि आता है इसलिए यदि गुरु और शनि बलवान हो तो केवल इन स्थानों के संयोग से ही व्यक्ति को आत्मज्ञान होने की सम्भावना बन जाती है।

अब हम इस स्थिति पर प्रासंगिक विचार करते हैं। ज्योतिष अनुसार हमारी कुण्डली के बारह कोष्ठको में स्थित राशियों का भी अपना स्थानिक महत्व रहता है, यह दूसरी बात है कि ग्रहों के बल से उनका स्वाभाविक बल कुन्द हो जाता है और वे राशि-पतियों के अनुसार अपना स्वतंत्र फल न देकर तदानुसार फल देने वाले हो जाते हैं। मन्त्रों को तत्वो के अनुसार

श्रेणी बद्ध करने से विस्तार अधिक हो जाता है इसलिए इन्हें गुणों के आधार पर ही वर्गीकृत करें तो अधिक अच्छा रहेगा। तत्वो मे आकाश, वायु और पृथ्वी ही शुद्ध रूप से सत्व, रज, तमोगुणी प्रकृति के हैं शेष जल और तेजस्—मिश्रित प्रकृति के हैं। वे गुण ही विस्तार पाकर तत्वों के रूप मे विभाजित हो जाते हैं।

ज्योतिष मे प्रत्येक ग्रह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं इसलिए इनकी युति, स्थिति और दृष्टि को देखते हुए बलाबल का निर्णय करना होता है। जो ग्रह, बलवान् हैं वह अपने गुण से सम्बद्ध देवता या मन्त्र की उपासना करने मे प्रवृत्त कर देगा। सामयिक परिस्थिति के प्रभाव से किसी ने विपरीत गुण वाले मन्त्र को अपना लिया है तो उसे अरुचि होने लगेगी या सफलता नही मिलेगी। हमारी मान्यता के अनुसार व्यक्ति का जन्म नियत संस्कार, देवता और सम्प्रदाय मे होता है। किसी व्यक्ति विशेष के प्रभाव और शक्ति के कारण कोई ग्रहों द्वारा निर्दिष्ट देवता से भिन्न की उपासना करता है और सफलता प्राप्त करता है। तो उसका प्रबल कर्म है। जिसने तात्कालिक भविष्य का निर्माण किया है और ऐसी स्थितियां अपवाद स्वरूप ही बनती हैं।

गुरु और शनि आत्मज्ञान के सूचक हैं। वे निश्चय से व्यक्ति को अध्यात्मवादी बनाते है। दोनो मे अन्तर इतना है कि गुरु सर्वतो भावेन है सत्वगुणी है और शनि रजोगुणी होकर भी सत्वगुण मे पर्यवसित होता है उसका लक्ष्य सत्व है। मंगल या राहु जैसे पापी और क्रूर ग्रह व्यक्ति मे आस्तिक भावना उत्पन्न ही नही होने देते।

सात ग्रहों मे दो जल तत्त्व, दो अग्नि तत्त्व, एक-एक पृथिवी वायु और आकाश तत्त्व प्रधान होते हैं। सूर्य और मंगल अग्नि तत्त्व, चन्द्र और शुक्र जल तत्त्व, शनि वायु तत्त्व, बुध पृथिवी तत्त्व और गुरु आकाश तत्त्व प्रधान माना गया है। तत्त्वों के आधार पर किया गया यह वर्गीकरण मंत्र और साधक के बीच बनने वाले संबंध को जानने के लिए किया जाता है। जानने का तरीका वही है साधक के नाम के पहले अक्षर से बनने वाली राशि के स्वामी और मंत्र के प्रथम अक्षर से बनने वाली राशि के स्वामी का कौन-सा तत्त्व है तथा दोनों मे परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध है, यह बात दोनों

के मेलायक में देखी जाती है, किसी व्यक्ति की स्वाभाविक योग्यता और साधना देखने के लिए पांचवें, नौवें, लग्न मे स्थित ग्रहों के अनुसार निश्चय किया जाता है कि किस व्यक्ति को किस प्रकार के मंत्र सिद्ध करने की इच्छा होगी और उसके द्वारा किया जाने वाला मन्त्र उसे कितनी सफलता देगा।

सामान्य दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि सूर्य अग्नि तत्त्व प्रधान है फिर भी इसमें सत्त्व गुण अधिक उत्कट रहता है, चन्द्रमा जल तत्त्व प्रधान होने के बावजूद सत्त्व गुणी माना जाता है, गुण विशुद्ध रूप से सत्वगुणी है ही। ये तीनों ग्रह सात्विक प्रकृति के हैं। मंगल और शनि तमोगुणी माने जाते हैं। मंगल क्रूर है इसलिए वह सम्पूर्ण रूप से तमोगुणी है शनि आकृति एवं प्रभाव से तमोगुणी है किन्तु परिणामी दृष्टि से सत्वगुणी है। बुध पृथिवी और शुक्र जल तत्त्वीय ग्रह हैं किन्तु गुणात्मक दृष्टि से रजोगुणी माने जाते हैं। राशियों और नक्षत्रों का भी इस रूप में वर्गीकरण किया जाता है।

मन्त्र पुरुष

विज्ञान कहता है—संसार की गतिशीलता में एक साइकल पद्धति है। जो कुछ भी हो रहा है वह नियत और निश्चित तरीके से, इस चक्र में कुछ भी व्यतिक्रम या भंग नहीं होता, प्रकृति उसकी व्यवस्था स्वयं करती है और उसमे किसी भी प्रकार की अनियमितता होने पर वह स्वयं उसे व्यवस्थित करती है। संसार में कार्बन और कार्बन डाइ आक्साइड के चक्र में आया तनिक-सा असन्तुलन हमारे जीवन को संकट में डाल सकता है। यह संकट हमारे लिए भयानक हो सकता है। प्रकृति इसके द्वारा अपनी व्यवस्था और सन्तुलन को निर्धारित करती है।

प्रकृति के चक्र विशाल स्तर पर चल रहे हैं जिसे हम तांत्रिक शब्दावली में महामाया का विलास अथवा महामैथुन कह सकते हैं। अदृश्य रूप में हमारे जीवन मे एवं हमारे इर्द-गिर्द जो घट रहा है, जो वैचारिक चक्र के रूप में व्यक्ति व समाज के मानसिक धरातल पर घट रहा है उसका ज्ञान शब्दावली के माध्यम से ही पाता है। याने माया के प्रबल प्रभजन को एवं शीतल मंद सुखद स्पर्श को हम भाव भूमि पर महसूसते और भोगते तो निरन्तर रहते हैं किन्तु उसको प्रकट होने के लिये शब्द का शरीर अनिवार्य रूप में चाहिये ही। हमारे पूर्वजो ने शायद यही सोचकर शब्द को ब्रह्म कहा था और उसी के अनुकरण पर बाइबल ने भी कहा था, शब्द ही भगवान् है। भगवान् की विशालता और अनुभवातीत गरिमा केवल शब्द के ही सहारे अभिव्यक्त हो सकती है यह चिरन्तन निष्कर्ष है।

जिस तरह भगवान् अपनी अनन्तता के कारण पर ब्रह्म से लेकर जीव तक की उपाधियो मे किंवा अणुतम से महत्तम तक व्याप्त है, उसी तरह उसका स्वरूप विविध कलेवर लेकर माया के आवर्त को रूपायित कर रहा है। यही तथ्य उसकी शाब्दिक अवधारणा पर घटित होता है। शब्द सामूहिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न कार्यों और क्रियाओं का परिचालन करता है।

इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम हमारे समाज पर दृष्टिपात करें तथा उसका विश्लेषण करें तो शास्त्रों का एक निगूढ पक्ष हमारे सामने प्रकट होगा। हमारे इसी समाज मे कुछ लोग ऐसे हैं जो परोपकार जन रक्षण करते हैं, कुछ लोग हत्या और लूट करते हैं, कुछ व्यक्ति बाजार में बैठ कर नोटों के रेले मे बहते रहते है। इन वर्गों में हम मनुष्यों को एक प्रतीक के रूप मे क्रियारत देखते हैं। इन सभी वर्गों की एक निश्चित शब्दावली है। यद्यपि यह शब्दावली मंत्र के रूप में साधित नही है फिर भी यह व्यवहार बल से एक विस्तृत माला मंत्र हो गया है। मण्डी मे या शेयर बाजार में बैठकर आत्मज्ञान नही किया जा सकता क्योंकि उस स्थान पर जिस मन्त्र का जप और पाठ किया जाता है वह रजोगुणी है उसमें सत्व गुण का प्रखर आवेश नहीं हो सकता। ऐसे ही डाकुओं के समुदाय में प्रचण्ड तमोगुणी स्तोत्र का पाठ हुआ करता है।

मा काली का प्रकट आवेश उसमें और उनके वातावरण में रहा करता है इसलिए मदिरा, मांस, खप्पर जैसी चीजें अपने आप जुट जाया करती है।

इन समुदायों के अपने माला मंत्र हैं। जो इन मंत्रों मे केन्द्रित हो गया उसे वह मंत्र सिद्ध हो गया। जिस तरह हम किसी मत्र को तल्लीन होकर जपते हैं और एक निश्चित संख्या तक जपते-जपते हमे वह, सिद्ध हो जाता है वही सिद्धान्त इन वर्गों में मान्य रहता है। जो लोग पूरी आस्था और निष्ठा से इस शब्दावली को प्रयोग में लाते हैं उनको ये कर्म सिद्ध हो जाते हैं।

व्यक्तिगत साधना मे और इस सामूहिक साधना मे एक अन्तर रहता है कि जब कोई भी व्यक्ति आकर्षण का, विकर्षण का या लक्ष्मी प्राप्ति का कोई प्रयोग करता है तो वह उसकी निजी और एकान्तिक साधना रहती है इसलिए उसमें केवल व्यक्तिगत असिद्धि सिद्धि ही रहती है। गोचर में चल रहे ग्रहों की या उस स्थान के प्रभाव का उस पर कोई असर नही पड़ता क्योकि साधक इन बाह्य प्रभावों से ऊपर उठने के लिये ही अपनी शक्ति को निर्दिष्ट मोड़ और स्तर दिया करता है। वर्ग चेतना में अनुकूलता की कोई गारन्टी नही होती अर्थात् बाजार में बैठने वाला हरेक व्यापारी लाभ ही नही कमाता क्योकि वह लोक प्रकृति से संचालित होता है और लोक प्रकृति के प्रभाव से मुक्त होने की या अपने आपको सुरक्षित रखने की विद्या उसके पास नही इसलिए वह केवल सक्रिय रहता है।

इन वर्गों के क्रिया-कलापो में रत व्यक्तियों को हम एक क्षण के लिए भूल जायें तो हमें महसूस होगा कि एक समुदाय ने एकत्रित होकर एक शक्ति स्वरूप किन्तु अदृश्य पुरुष को उत्पन्न किया था और वह अपनी विविध भंगिमाओ और विभिन्न कार्यों से वहां प्रस्तुत हैं। यदि इसी वर्ग चेतना को हम मन्त्र शास्त्रीय पद्धति से रूपायित कर पाते और इस व्यवसायी वर्ग द्वारा मांत्रिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता। नि.सन्देह केवल अर्थ का आकर्षण होता लाभ ही रहता किन्तु इस प्रकार का प्रयोग नही किया जाता, न ऐसा सुगम है तदपि यह तो हम देख ही र हैं व्यवसाय मंत्र का जप करने से लक्ष्मी का आकर्षण होता ही है, गाँव की सारी

सम्पदा बाजार में अपने चल स्वरूप में स्थापित हुई रहती है। डाकू भी यदि व्यवस्थित रूप से माँ कालिका के मंत्रों की साधना करते तो उनके वे व्यवहार उन्हें अनुमति की उच्च भूमिका में ले जाते।

व्यवहार में प्रकट इस तथ्य से प्रतिदिन साक्षात्कार करके भी हम प्रश्न करते हैं, मंत्र क्या होता है? क्या यह सत्य है? एक निश्चित शब्द वाले वाक्य को बार-बार बोलने से मारण मोहन जैसे प्रयोग क्यों कर संभव हैं? इन प्रश्नों का वास्तविक विश्लेषण बाद में, इस समय हम केवल सरल प्रयोग के रूप में एक व्यावहारिक बात देखें। उसमें से कोई भी आदमी उन शब्दों को निरन्तर बोलने लगे जो अपशब्द या गालियाँ होती हैं तो कुछ ही समय में वे विकर्षण या विद्वेषण का वातावरण उत्पन्न कर देंगी। अथवा हम उन शब्दों का निरन्तर जप करने लगें जो मधुर अथवा राम या भगवान के पर्याय हैं निश्चय से कुछ दिनों में हमें वशीकरण सिद्ध हो जायेगा। इस मंत्र के जप से सर्वजन वशीकरण हो जाता है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग विद्वेष भाव रखते रहें क्योंकि चुम्बक या बिजली भी सभी चीजों को आकर्षित या आवेशित नहीं करती। बिजली की धारा जितनी बली होगी उतनी ही आकर्षित करेगी यही बलाबल मंत्र की शक्ति के विषय में भी विचारणीय रहा करता है।

आशय यह कि किसी भी निश्चित शब्दावली का बार-बार उच्चारण करने पर एक विशेष प्रकार का साइकल बनता है और उस साइकल का अपना गुण धर्म प्रभाव हुआ करता है। हमने शेर या सर्प पाला है तो उसका जो नैसर्गिक गुण एवं स्वभाव हैं वैसा वातावरण बन कर ही रहेगा। किसी विशेष प्रकार के मंत्र का जप करके हम एक अदृश्य किन्तु अधिक शक्तिशाली व निश्चित कार्यकारी पुरुष को उत्पन्न करते हैं जिसे साइकल कह सकते हैं।

मंत्र पुरुष किसी भी मंत्र के निरन्तर जप करने से प्रकट होता है किन्तु उसमें प्राण आते हैं भावना से, अर्थ से। साधक अर्थबोध से एवं तदाश्रित श्रद्धा से शून्य होकर किसी मंत्र का साधन करता है तो मंत्र पुरुष उत्पन्न होकर भी केवल यान्त्रिक बना रहता है, उसमें प्राण और सत्व की वह प्रखरता नहीं रह पाती।

हम मनुष्य हैं इसलिये, प्रत्येक साइकिल या लीला का मानवीकरण करके देखने के अभ्यस्त हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि मानव देह सर्वोत्तम देह है, इसमे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भाव की सिद्धि है, इसमे सारे संसार की विचित्रता विद्यमान है। प्रकृति ने स्वरों और व्यंजनों को अण्डजो और जरायुजों मे बांटा है। मनुष्य से इतर प्राणी अपने लिये नियत वर्णों का का ही उच्चारण करके अपने आवेश और संवेदना को अभिव्यक्त कर पाते हैं जब कि मनुष्य सारे वर्णों को स्पष्ट और परिच्छिन्न रूप मे बोल लेता है। यही एक कारण है कि उसने प्रकृति मे विद्यमान चक्रों के रहस्यों को समझा और उनका सर्जक बन गया अन्यथा पशु और पक्षियों की तरह वह जिन ध्वनियों का जप कर सकता या उनका ही करता रहता और विद्वेषण व आकर्षक जैसे प्रयोग करता रहता।

मनुष्य ही वह स्तर है जिसके पास ज्ञान और कर्म दोनो के अमोघ अस्त्र हैं। इस द्विभुजी व्यक्ति का वर्चस्व देवताओं का अतिक्रमण भी कर देता है तो जंगम वनस्पति वर्ग अथवा दानवी-पाशवी स्थितियों का भी अवतार कर सकता है। ज्ञान योग से प्रकृति के रहस्यों का अनावरण करता हुआ वह प्रकृति स्वरूप हो जाता है।

देवताओं के रूप मे हमारे पूर्वजों ने जिस रूप और परिकर की कल्पना की थी वे इतने वैज्ञानिक और सटीक हैं कि आज के विकसित युग में भी वे संगत व उपयुक्त लगते हैं। प्रत्येक देवता के साथ उसका प्रतीक रहा करता है और वह प्रतीक उसका हृदय अथवा शक्ति स्रोत रहा करता है। इस प्रतीक से हम उस मन्त्र स्वरूप देवता की शक्ति का, शक्ति की (रेंज) परिसीमा का, उसकी कार्यविधि का अनुमान सहज रूप से लगा सकते हैं। जैसे विष्णु के हाथ मे स्थापित सुदर्शन रक्षा एव गति का प्रतीक है, स्थिर वस्तु सबल सुरक्षा प्रदान नही कर सकती इसलिये वैष्णवी मन्त्र सत्वोन्मुख रजोगुण की शक्ति से पूर्ण रहते हैं इसके विपरीत रुद्र के हाथ में विराजमान त्रिशूल संहार शक्ति का प्रतीक है वह अस्त्र भी है और शस्त्र भी, आक्रान्ता पर वह प्रलयंकर रूप धर कर आघात करता है किन्तु स्वयं मे निष्क्रिय है, आवरक है। ब्रह्मा या सरस्वती के पास किसी भी प्रकार का विनाशक आयुध नहीं है क्योंकि वे शुद्ध सत्वगुणी स्वरूप हैं,

कमल और पुस्तक ही उनके प्राण हैं। इनको कहीं संहारक बनना हो तो ये उसी तमोगुणी या तमोभिमुख रजोगुण की प्रार्थना व आह्वान किया करते हैं।

मन्त्र के रूप में जिस प्रतीक पुरुष की स्थापना की जाती है उसकी शक्ति और स्वरूप का ऐसा सामंजस्य विश्व के किसी भी दर्शन के पास नही है। देवताओ के इस स्वरूप के साथ थोड़ा और विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि हरेक देवता के साथ कोई न कोई वाद्य यन्त्र है। ये वाद्य यन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं और इनमे भिन्न-भिन्न ही ध्वनियाँ निकलती हैं जैसे नगाड़े तबले और मृदंग से त वर्ग के कुछ अक्षर, डमरू से ट वर्ग के कुछ वर्ण, घुंघरू से च वर्ग के वीणा से स्वर और विसर्ग के जैसे अक्षर निकलते प्रतीत होते हैं। अर्थात् फूंक से बजने वाले शंख, बंसरी, आदि थाप से बजने वाले मृदंग पटह आदि और तार से बजने वाले वीणा, सितार आदि वाद्य वर्णमाला के विशिष्ट अक्षरो की ध्वनि उत्पन्न करते हैं। गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि तीन गुणो (सत्व, रज, तम) से सम्पन्न होने वाले कामों का छः कर्मों (मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, स्तभन, विद्वेषण) के रूप में वर्गीकरण इनके आधारभूत देवताओ की मानव सरीखी मूर्ति व व्यवहार की कल्पना इस बात की सूचक है कि इन देवताओ से सम्बन्धित जो वाद्य यन्त्र हैं उनसे उत्पन्न होने वाली ध्वनि के अक्षर ही उनके मन्त्रों में रहा करते हैं और वे वर्ण ही गुणों के माध्यम से इन छ. कर्मों को सम्पन्न करते हैं।

हमारे घरो मे लगी बिजली विभिन्न उपकरणो के माध्यम से अनेक प्रकार के कार्य करती है, बिजली के बिना वे सारे उपकरण निष्क्रिय और व्यर्थ रहते हैं। यह तथ्य हमारी समझ मे आता है कि बिजली का शक्तिशाली प्रवाह ही उन उपकरणो को सक्रिय करता है किन्तु जहाँ बिजली मूल रूप मे उत्पन्न की जाती है वहाँ कहाँ से और किसलिये आती है? चुम्बक की गतिशीलता से बिजली आवेशित होती है पर चुम्बक मे इतनी बिजली नही होती और न निरी गति से इतनी बिजली उत्पन्न हो सकती है। शक्ति हमारे परिमण्डल में विद्यमान है, हम और हमारा ससार शक्ति के महासागर में तैर रहा है और ये क्रियायें उस शक्ति को प्रकट एवं पुंजी-

भूत करने के भौतिक अनुष्ठान हैं जिनमें वह शक्ति बाह्य आवरण में अपने चमत्कार प्रदर्शित करती है।

मन्त्र पुरुष को उत्पन्न होने के लिये भी ऐसी परिस्थितियाँ चाहिए। मन्त्र का कोई दृश्य अंग नहीं होता याने उसका कोई तत्त्वगत रूप या आकार स्थूल रूप में नहीं रहता इसलिये वह हमारे अन्तःकरण में ही उत्पन्न और पल्लवित होता है ! हमारे व्यवहार में उसके परिणामी प्रभाव ही लक्षित होते हैं। कई बार हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि संसार में जितनी जीवात्मा थीं उतनी हो अगर रही हो तो आज जनसंख्या में इतनी वृद्धि कैसे हो गई ? एक मन्त्र का स्वरूप यदि यहाँ प्रत्यक्ष हो गया तो यह अन्यत्र कैसे होगा ? ये प्रश्न हमारे अज्ञान के कारण हैं, क्योंकि इतने विशाल विश्व में व्याप्त जीवात्माओं की गिनती सम्भव ही नहीं है। मूल रूप में विद्यमान एक तत्त्व ही अनेक के रूप में विस्तृत होता-होता अनन्त हो गया तो उसके कितने विशाल आयोजन में सक्रिय योगदान करती है। यह चौंकने वाली गणित है, किन्तु हमारी प्रत्येक मासपेशी, कोशिका और रक्ताणु अपनी गति एवं गणित में निपुण हैं, इनका व्यवस्थापक चौकन्ना और चतुर है।

हमें गर्व है कि आज हम ये सारी क्रियायें यन्त्रों के जरिये सम्पन्न कर सकते हैं। कम्प्यूटरों के जरिये आज का विज्ञान हमारी ज्ञानेन्द्रियों का काम निपटा सकता है किन्तु एक-एक ज्ञानेन्द्रिय का काम अंजाम देने के लिये कितने विशाल कम्प्यूटर की आवश्यकता होगी और एक व्यक्ति के सारे कार्य कलापों को सम्पन्न करने के लिये मीलों क्षेत्रफल में छाये कम्प्यूटर की जरूरत होगी। प्रकृति इतना विस्तार नहीं करती, यही मानवाकृत और प्रकृति निर्मित में अन्तर है। प्रकृति की महिमा को श्रद्धाभाव से समझा जा सकता है। यही श्रद्धा प्रकृति के रहस्यों का अनावरण करती है। भारत ने प्रकृति से तादात्मय भाव बनाये रखा इसलिये उसकी सिद्धि और साधना व्यक्तिगत भी रही और वाह्य से निरपेक्ष भी।

यह मानव की सर्वोत्तम विशेषता है कि उसमें सारे ब्रह्माण्ड की विचित्रता निहित है इसलिये वह प्रकृति में सक्रिय चक्रों (साइकल्स) को समझ लेता है और बना लेता है। देह की दृष्टि से हमारी संवेदना, ज्ञान

धारणा और शक्ति की एक न्यूनतम और अधिकतम सीमा बंधी रहती है किन्तु उस सीमा को विकसित या मन्द करने की शक्ति भी हमारे में रहती है। आवश्यकता है उस रहस्य को समझने की। हमारी देह में गर्मी में पसीना आता है, सर्दी में ठिठुरन होती है—यह सापेक्षता और उससे जुड़ी हुई सीमा के कारण है। यदि हम इस नियन्त्रण व्यवस्था को समझ जायें तो गर्मी मे ठिठुरन और सर्दी में पसीना आ सकता है।

मं पुरुष मे इस तरह अनेक विचित्र शक्तियां होती हैं। चूंकि उसका रूप तन्मात्रा गत रहा करता है इसलिये अन्तःकरण पर ही इसका प्रभाव पड़ा करता है। बिजली की मोटर बांधने के लिये हम जिन सिद्धातों और पद्धतियों पर काम करते हैं वे उस मोटर के संभावित कार्यों और क्षमता का सूचक आधार रहते हैं, इसी तरह सासारिक कार्यों के निमित्त हम जिन मन्त्रों या मन्त्र पुरुष की साधना करते हैं, उसके अपने पर होने वाले कम्पनों से कुछ कोण बनते हैं, उन्हे हम मनुष्य के समान आकृति प्रदान करने के लिये अनेक विस्तार और विकास की सीमा या गणना संभव होकर भी हमारे लिये असम्भव है।

मूल रूप में अपने आपको ही समझने की कोशिश करे तो बहुत सारे प्रश्न स्वतः शान्त हो जाते हैं। वह अपनी अद्भुत क्षमता पर विश्वास करने लगता है और यही विश्वास उसे सफलता दे जाता है। वेदान्त दर्शन कहता है "वही मैं हूँ" आत्मचेतना ऋषि कहते हैं—जो तुम्हारे देह मे है वही ब्रह्माण्ड में है" स्थूल बुद्धि से इन वाक्यों का केवल शब्दार्थ समझ में आता है या ऐसा सन्देह होता है कि ऐसा किस प्रकार सम्भव है किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर यह निष्कर्ष मिलता है कि यही सत्य है।

हमारे पास ज्ञान के पांच माध्यम हैं और इन पांचों माध्यमों का क्षेत्र इतना विस्तृत है जिसमे सारा संसार समाया हुआ है। हम शब्द को ही लें शब्द मशीन का है या प्राणी का? मोटर मेकेनिक एन्जिन की आवाज सुनकर उसमें आये दोष का ज्ञान कर लेता है। यह बात तो विशिष्ट क्षेत्र के व्यक्ति की थी, सामान्य जन भी हजारों प्रकार की आवाजों को पहचानने की क्षमता रखता है। अपने परिचित जनों की पहचान वह केवल बोली

सुनकर ही कर लिया करता है। यही हाल दूसरी इन्द्रियों का है हमारी छोटी-सी नाक अनेक तरह की गन्धों का ज्ञान रखती है और इसकी गन्ध ज्ञान की शक्ति में जितना चाहे उतनी वृद्धि होती रहती है।

इनके अतिरिक्त हमारे शरीर में ऐसी स्वचालित दुहरी, तिहरी व्यवस्थायें हैं जो अहर्निश सक्रिय रहती हैं। रात में गहरी नींद में सोये रहने पर मच्छर के काटने पर हाथ अपने आप उसी स्थान पर जायगा और उतनी ही शक्ति से खुजलायेगा जितनी आवश्यकता है। इस खुजलाहट से मच्छर उड़े अथवा काटकर उड़ गया हो—इससे कोई अन्तर नही पड़ता, क्योंकि हमारे शरीर को मच्छर से कुछ भी लेना देना नहीं है। शरीर की स्वरचना व्यवस्था इसलिये सक्रिय हुई कि मच्छर ने अपने देश से जो पदार्थ हमारे शरीर में प्रवेश कराया है उसे वहीं समाप्त करने के लिये हमारे हाथ ने उस स्थान को रगड़ कर रक्त-प्रवाह को तीव्र किया है जिससे रक्ताणु अधिक मात्रा में एकत्रित होकर विषाणुओं का सफाया कर दें।

इस प्रकार की कितनी क्रियाएं होती हैं ? प्रतिक्षण अरबों की तादाद में बनने मिटने वाली कोशिकाएं हाथ, अनेक सिर, अनेक सिर वाले विचित्र व्यक्ति के रूप में मान लेते हैं। तात्विक दृष्टि से सारे शब्द शास्त्र में उसी चैतन्य या चित् शक्ति की प्रतिष्ठा की जाती है जो इस विशाल संसार में विविध रूपों में कार्यरत है। ध्वनियों को विशेष शब्दों में नियत करके हम वही कार्य करते हैं, जो हमारे समाज में विविध व्यवसाय करने वाले लोग किया करते हैं। मंत्र के रूप में नियत किये जाने वाले शब्द और उनका जप शक्ति को एक निश्चित दिशा एवं रेंज प्रदान करने का तरीका होता है। व्यवहार में हम देखते हैं कि जो व्यक्ति जितना समर्थ होता है उनका नाम उतना ही अधिक लिया जाता है अर्थात् नामों की शक्ति के साथ नाम का जप जुड़ा रहता है। व्यक्तिगत साधना में यही सिद्धान्त प्रति लोम विधि में लागू होता है अर्थात् जिस नाम (मंत्र) को जितनी बार जपा जाएगा उसमें उतनी ही शक्ति, उतनी ही तत्परता आयेगी।

मन्त्र पुरुष की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसको प्रकट करना ही दुष्कर होता है अन्यथा प्रकट होने के बाद न इसकी क्षमता नष्ट होती है, न यह नष्ट ही होता है। साधक के साथ ही वह नष्ट होता है।

कभी-कभी किसी अधिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के प्रभाव से यह कीलित किया जा सकता है या साधक के विपरीत आचार-व्यवहार के कारण वह प्रभाव शून्य हो जाता है। अथवा गुरु के शाप से यह व्यक्ति को छोड़कर लुप्त हो सकता है। इनमें से कोई कारण न हो तो यह मशीन से अधिक शुद्ध रूप में कार्य करता रह सकता है।

विनियोग में वर्णित तथ्य मंत्र की जाति, शक्ति, सम्प्रदाय, प्राण, आदि की सूचना देते हैं। हमारे आग्रह मंत्र के देवता का स्वप्न में या प्रत्यक्ष में दर्शन करा देते हैं अन्यथा ज्ञान मार्गी चिन्तन में इस प्रकार के रूप और आकार का कोई अस्तित्व नहीं रहता। विरले भाग्यहीन व्यक्ति ही अपने जीवन में किसी मनोरथ का निरन्तर चिन्तन करके भी असफल रह जाते हैं अन्यथा आशायें फलवती होती ही हैं। जिस व्यक्ति के सन्तान नहीं होती वह सन्तान प्रद मन्द मन्त्र का अनुष्ठान करके ऐसे मंत्र पुरुष को अभिव्यक्त करता है जो सन्तान रोधक कारणों को दूर करता है यही बात अन्य आशाओं की पूर्ति के लिए किये जाने वाले अन्य अनुष्ठानों की है। पद्धति और प्रक्रिया भौतिक और मानसिक जगत में एक ही है। वातावरण के अनुसार इसे मारफत, मंत्र या शक्ति विलास नाम दे देते हैं।

मंत्र का देहगत प्रभाव

हमारा यह शरीर दो भागों में विभाजित है जिन्हें हम करण कहते हैं। करण एक तकनीकी शब्द (टैक्नीकल टर्म) है जिसका अर्थ होता है साधन अर्थात् हमारे ये विभाजित देह साधन हैं। साधन के साथ ही दो स्थितियाँ और आती हैं जिनके बिना साधन का न कोई अर्थ होता है, न अस्तित्व ही है; साध्य और साधक। अर्थात् साधन अपने आप में स्वतन्त्र न होकर भी साधक और साध्य का माध्यम बनता है। इस दृष्टि से हमारी देह एक

उपकरण है, एक साधन है, किन्तु प्रश्न उठता है, वह साधक कौन है और उसका साध्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर पीढियों ने खोजा है। कई तरह के समाधान प्राप्त किये हैं, फिर भी सन्तुष्ट नहीं हो पाए।

द्वैत और अद्वैत का मार्ग इसी प्रश्न के कारण बना ब्रह्मवादी वैष्णव और मायावादी शाक्त यहीं से चले दोनों के अपने प्रबल तर्क रहे, दोनो ने अपने युक्ति जाल से अवाच्य को बोधगम्य बनाने का प्रयास किया। वस्तुत: दोनों में कोई अन्तर नही रहा किन्तु साधनागत विभेद इतना तीव्र हो गया कि दोनों परस्पर विरोधी बन गये। हार कर दोनो ने कह डाला, वही साधक है और वही साध्य है। यह 'वह' कौन है इस बात का एक सा (ब्रह्म) कहता है दूसरा सा (शक्ति या माया) कहता है और इन दोनों शब्दों मे कोई बड़ा अन्तर नही रहता दोनों एक ही 'तत्' शब्द से बनते हैं।

यदि हमारे जीवन का साध्य है तो क्या है ? यह जानने की कोशिश हम भी करते हैं किन्तु प्राय: दु:खान्तिका यह होती है कि जिसे बड़े प्रयास से हम प्राप्त करते हैं और प्राप्त करने के बाद यह जान पाते हैं कि यह तो वह नहीं था जिसकी हमें कामना थी और हमारी खोज फिर चालू हो जाती है, हमारी अशान्ति फिर बढ जाती है। अनेक बार हमें अनुभव होता है कि हमारे जीवन का कोई स्वतन्त्र अर्थ है ही नही, सब कुछ नियत और निश्चित है और हम नियतिविद्ध होकर अज्ञान भाव से चलते चले जाते हैं। नियति का रहस्य हमारे लिए अबोध्य पहेली बना रहता है। यह विश्वास ही नही होता कि हम कहीं भी स्वतन्त्र हैं।

वास्तविकता यह नहीं है। हम स्वतन्त्र हैं, पूर्ण स्वतन्त्र किन्तु कुछ अनिवार्य समय ऐसे हैं जिन्हें भोगना हमारे जीवन की या मानव देह की मूल आवश्यकता है किन्तु इन अनिवार्यताओं, जिन्हें हम प्रतिकूल रूप से अधिक तीव्रता से अनुभव करते हैं, व पीछे हमारा मन है, हमे पराधीन समझने वाला भी यह मन ही है। जब यह मन बहिर्मुखी होता है तो अपनी कल्पनाओं को पराश्रित भी बना लेता है और विस्तृत भी। इसके स्वयं के आग्रह और सामाजिक बोध इसे स्वस्थ नही रहने देते और यह विक्षिप्त की तरह हर चेष्टा का अपनी ओर से अर्थ कल्पित कर लेता है, सफल होने पर

इतरा लेता है, असफल होता है तो खिन्न हो लेता है या नियति की बात कहकर निराश हो लेता है, जबकि यह नियति उसी के द्वारा किये गए कर्मों का फल है और उससे यह तटस्थ हो सकता है किन्तु ऐसा वह चाहता ही नही।

साधक का भेद और साध्य का रहस्य प्राप्त करने के लिए हम बाहर भटकते हैं, बाहर के विस्तार को जानने में हमारा जीवन ही नही पीढ़ियां समाप्त हो जाती हैं। फिर भी वह हमारे लिए अलभ्य रहता है क्योंकि बाहर जो कुछ है वह प्रकृति के अपरिमेय विस्तार मे है और प्रकृति है प्रतिक्षण परिवर्तनशील, गति उसका रूप है। जो वस्तु स्थिर हो उसे जाना जा सकता है किन्तु जो अकल्पनीय रूप से विस्तृत है और गतिशील है, उसे जान लेना कठिन है।

भारतीय तत्त्वदर्शी लोग सम्पूर्ण विस्तार को पांच स्तरो में विभाजित करते हैं जिसका अर्थ शून्य है और यही प्रकृति की प्रारंभिक कि वा मूल अवस्था है इसे शब्द और ज्ञान, अनुभव और प्रतीक से न समझा जा सकता है, न समझाया जा सकता है। इसे हम परामाया के रूप मे जानते हैं, इसके क्षेत्र मे प्रवेश मिल जाने पर व्यक्ति मुक्ति को भी निःसार समझ लेता है क्योंकि वह स्थिति बंधनकारिणी के रूप मे और वैभव का दर्शन करने की, उससे एक रूप ही रहने की इच्छा करती है। यह परम स्थिति है और परांब की अनुकम्पा मे ही प्राप्त होती है, पता नही कितने जन्मो तक उसे रिझाया जाता है जब कही दयार्द्र होकर अपने अन्तःपुर मे प्रवेश करने की अनुमति देती है। कितनी तो शर्तें हैं उसकी, कितने प्रकार के अवरोध हैं, कितनी ताड़ना और प्रलोभन हैं, इन सब में जो तप लेता है उसे वे शिव स्वरूप प्रदान करती हैं और उस शिव मे वे शिवा के रूप में प्रकट होती हैं। अशिव को, हमारे जीव मे असत् रूपो के प्रति लुभा रहे हम लोगो को, इतना लम्बा मार्ग पार करना होता है कि चलते-चलते हम शव हो जाते हैं, किन्तु हमारा यह शव हमारी गति नही होता है क्योंकि हम तो उसके श्री चरणो मे समर्पित हुए रहते हैं इसलिए वह शव को शिर रूप बनाती है। यह रूप भी उसके उदात्त स्वर को प्राप्त करने भोगने लायक नही रहता इसलिए प्रकृष्ट शिव और परम शिव तक

पहुंचना पड़ता है। इसी तथ्य को हम वेदान्ती भाषा मे ऐसे कर सकते हैं कि अज्ञान से ज्ञान प्राप्त करते हैं (जब अज्ञान का नाश होता है तो ज्ञान का सात्विक स्वरूप प्रकट होता है) ज्ञान, में प्रकृष्ट ज्ञान, परम ज्ञान या ज्ञानतीत अवस्था प्राप्त होती है।

अभी इस स्थिति पर विचार नही करना है क्योंकि न ये विचारणीय है, न वचनीय। इससे निचला स्तर महा माया का जिसमें वह विश्वरूप होकर अनन्त के शून्य को भरे रहती है हमारी आंखें जितने विस्तार को देख सकती हैं उससे भी बहुत-बहुत अधिक रूप में वह क्रिया रत है यह इन्द्रियातीत और ज्ञानतीत न होकर भी इतनी व्यापक है कि हमारे सारे परिणाम छोटे पड़ जाते हैं, इन्हें समझने के लिए हमारे ज्ञान के उपकरणों की सीमा का विस्तार करके भी हम समय को नही पा सकते।

इससे नीचे माया का क्षेत्र है यही क्षेत्र हमारे लिए सह गम्य और थोड़े प्रयत्नों से ही प्राप्त करने योग्य है सांसारिक अनुभूतियों और चमत्कारों का केन्द्रस्थल यही है और अन्तर्यात्रा का आधारस्थल (बेस स्टेशन) भी यही है। इसमें मन प्रमुख है। ऊपर जिस अन्त.करण की बात हम कर आये हैं और जिसमे मन, बुद्धि एवं चैतन्य है वह माया का क्षेत्र मन की परिधि में सिमट जाता है। आवेगों और आवेशो की झंझा इसी क्षेत्र मे चलती है, कुण्ठा और अव का ज्वालामुखी इसी मे है जो किसी भी क्षण हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व को विनष्ट कर सकता है।

मन, बुद्धि और चित् का मुक्त त्रिवेणी मे बुद्धि से एव मन से ज्ञान और अनुभव की सीमा चल पड़ती है। बुद्धि जब मन के आग्रहो से दबी रहती है तो अपनी स्वाभाविक शक्ति को खोती नही बल्कि विपरीत गति हो जाती है, जैसे कोई समर्थ व्यक्ति आततायी बन जाता है, वास्तव में उसे सज्जन बनना चाहिए था और सज्जन होता तो भी वह उतना ही सज्जन बनता जितना प्रबल आततायी बना हुआ है। इसलिए हम अज्ञान मे प्रवीण हो जाते हैं। यहां के बाद अनुभव का विशाल बंधन व्यक्ति के बंध आता है।

अन्तःकरण के बाद बहिःकरण का क्षेत्र शुरू होता है जिसमे सारे सूक्ष्म स्तर ऐन्द्रिय आयामों से जुड़ते चले जाते हैं। मन का गुणात्मक जगत् जो

तीन के रूप मे सीमित था अब तत्त्वों के पांच मे व्यक्त होने लगता है। इन तत्वो का भी या इनमे भी सूक्ष्म से स्थूल का क्रम चलता है जो आकाश जैसे अमूर्त से चलकर धरती जैसे मूर्त तक आ पहुंचता है।

यह तत्त्व स्तर है किन्तु अन्तःकरण और बहि:करण अथवा मनोमय देह और भौतिक देह के बीच मे एक स्तर और रहता है जिसे शक्तिमय स्तर कहते हैं। शक्ति के बिना गति नही और गति के बिना परिवर्तन नही। इसे हम वैद्युतिक शरीर कह सकते हैं और इसमें दोनों प्रकार की विद्युत् का उत्पादन और विसर्जन होता रहता है आश्चर्य इस बात का होता है कि हमारे देह में संवाही और असंवाही दोनों प्रकार के अंग होने के बावजूद और भी और दोनों के परस्पर अनुस्यूत रहते हुए सारा काम चलता है। हमारा भौतिक शरीर घर्षणिक विद्युत उत्पन्न करता है और मन चुम्बकीय। दैहिक विद्युत् का निर्गम मार्ग हाथ (थोड़ी सीमा तक पैर) है और चुम्बकीय का मार्ग नेत्र हैं। यों तो यह विद्युत सारे शरीर से सबध रखती है तो भी ये अग इसके निर्गम के प्रमुख द्वार रहते हैं। आंख मूंद कर ध्यान करने या मंत्र जप करने की व्यवस्था देने के पीछे यह भी एक कारण है कि इससे विद्युत् धाराओ का अनर्गल विकिरण नही होता है, वे संतुलित एवंप्रबल होकर अभीष्ट दिशा में गमन करने लगती है। हमारी मनः स्थिति का ज्ञान आखों के जरिये इसीलिए हो जाता है कि आखें मन के द्वारा उत्पन्न की गई विद्युत तंरगों की सर्वोच्च संवाही होती है और उसमे जिस प्रकार के भावों की प्रबलता होती है वैसा ही रंग उनमें झाकने लगता है जो सारे चेहरे पर छिटक जाता है। यो घर्षणिक विद्युत मन के जनरेटर पर प्रभाव नही डालती पर उसको मात्रा से मन की चुम्बकीय विद्युत का तारतम्य घने रूप मे जुड़ा रहता है। मन की उदासी या थकावट के कारण शरीर का शिथिल होना और शारीरिक थकावट से मन का शिथिल हो जाना, इसी तारतम्य के कारण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

अन्त में आता है भौतिक शरीर जो पांच तत्त्वों का सम्मिश्रण है अथवा संतुलित संयोजन है। संतुलन का अर्थ यहा अनुपात से है। मन के अथवा अन्तःकरण के तीन गुण जब स्थूल रूप ग्रहण करके भौतिक देह में आते हैं तो दोष कहलाने लगते हैं। दोष या गुण न तत्त्वों से भिन्न हैं न इनके

बिना तत्वों की स्थिति ही संभव है। आयुर्वेद हमारे वाह्य शरीर के विकारों को जानने के लिए दोषों को पकड़ता है, उनके संतुलन को देखता है और इनमे आगे विपर्यय या व्यतिक्रम को ठीक करता है। ये दोष गुणों के स्थल रूप हैं और तत्त्व भी या तत्वमय यह देह भी उन्ही सूक्ष्म आयामों का स्थूल रूप है।

ज्ञान और विज्ञान का भेद अथवा जड़वाद (भारतीय दर्शन की दृष्टि जड प्रकृति का विश्लेषण नही, वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार मैटिरियलिज्म) और चेतनवाद का अंतर केवल मन तक माया के स्तर तक चलता है, इससे आगे भौतिकवाद का पदार्थ ज्ञान नही चलता। आज का समस्त वैज्ञानिक विकास केवल शक्ति के स्तर,तक पहुंचा है मनोवैज्ञानिक अध्ययन को भी इसी सीमा में मान लें तो सामान्य रूप से मन की प्रवृत्तियों तक पहुंचा है। इससे आगे की परिकल्पना उसके पास नही है।

ये जो स्तर बतलाये हैं इनमे उत्तोत्तर प्रबल है और सक्रिय हैं। तत्त्वमय संसार के भीतर जो शक्तिमय जगत् है वह उससे प्रबल है। और उससे प्रबल गुणात्मक ससार है। बाहर प्राकृतिक रूप से जो कुछ परिवर्तन दिखाई देता है उसके पीछे शक्ति का कितना प्रचण्ड प्रवाह है इसे हम नही जानते, अगर विज्ञान ने भी परमाणु का विखण्डन या सलयन नही किया होता तो यह भी नही जान पाता। अपने-अपने स्तरो मे सबका पूर्ण वैभव है। तत्त्वमय स्तर पर हम जो अनुभव करते है उसमे शक्ति प्रच्छन्न और मद रूप से क्रियाशील है, शक्तिमय स्तर पर पदार्थमय रूप गौण या मध्यम बन जाता है तो गुणात्मक स्तर पर शक्ति मन्द हो जाती है, इस तरह ये सारे स्तर एक दूसरे से जुडे रहकर भी अपने स्वतन्त्र रूप, गुण और प्रकृति से युक्त हैं तथा एक से दूसरा अनुलोम क्रम से प्रबल है। मन मे या गुणात्मक जगत में बहुत अधिक शक्ति है इसलिए जब ये गुण टकराते हैं या आवेश का रूप धारण करके विखण्डित होते हैं तो प्रलयंकर रूप दिखाते है। यह प्रलय व्यक्ति के अपने देह या उसकी सामर्थ्य सीमा मे आ रहे वस्तु जात तक रहती है। लोभ, काम, ईर्ष्या आदि भावों का जो गुणात्मक जगत की इकाईया हैं, इनका जब प्रकटीकरण होता है या जब इनमे विस्फोट होता है तो व्यक्ति असाधारण कार्य कर जाता है। यह

निर्णय करना हमारी समाज संहिता के अधिकार क्षेत्र की बात है कि वे कार्य जघन्य रहे या स्पृहणीय ?

विज्ञान या वैज्ञानिक—सूत्रों की संगति की बात अभी हम छोड़ दें और हमारे मूल प्रश्न पर लौट चलें। साधक और साध्य का अनुसंधान करने के लिए साधन को पूरी तरह समझ लेना चाहिए। बाह्य जगत् और भौतिक देह के विषय में हम बहुत कुछ जानते हैं और जान रहे हैं किंतु अन्तःकरण के सम्बन्ध में हमें स्वयं प्रयत्न करना पड़ेगा, इसमें दूसरों की उपलब्धियां केवल परिचय कराती हैं वास्तविकता से एक रूप होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कोशिश करनी पड़ती है।

अन्तःकरण में जिन तीन चीजों का समावेश है वे एक दूसरे से भिन्न हैं और एक दूसरे के पृष्ठ पर हैं। हमारा मन जिस प्रकार के आग्रहों से ग्रस्त रहता है बुद्धि उसमें जुड़ जाती है और बुद्धि जिसमें जुड़ जाती है चैतन्य उसमें स्वतः आ जाया करता है इसलिए मन एक आधार बिन्दु रहा। मन की गति पारद या जल की तरह होती है। और बुद्धि ऊर्ध्व शिख अग्नि की तरह रहती है। मन में कल्मष होता है और बुद्धि संसर्गज दोष से कलुषित हो जाती है अन्यथा मूलरूप में बुद्धि निर्णायक होती है और विवेक उसका धर्म होता है याने बुद्धि विवेक धर्मिणी होती है। मन में संशय होता है, वह अतिचार करके बुद्धि को मन्द कर देता है इसलिए हम जब साधक का रूप धारण करके वास्तविक साधक का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निकलते हैं तो सबसे पहले मन का संधान करते हैं, उसके गुणात्मक धर्म का परिचय प्राप्त करते हैं, उसके तर्कों और प्रश्नों के आवरण को जान पाते हैं। मन के आवेशों को आमने-सामने होते हुए बुद्धि के स्थिर क्षेत्र में प्रवेश करते हैं।

असल में चैतन्य के स्वानुभव एवं स्वयं प्रकाश और मन की बहिर्मुखी अभिरुचियों का क्षितिज बुद्धि है। वह जितनी चैतन्य के निकट है उतनी ही मन के भी, इसलिए यह सतुलन बनाये रखने वाला बिन्दु है इसमें असन्तुलन होने पर व्यक्ति विनष्ट हो जाता है। गीता में स्पष्ट कहा गया है—"बुद्धि नाशात्प्रणश्यति" बुद्धि में उद्वेग, आवेश या संवेग जैसी कोई स्थिति नहीं है इसलिए बुद्धि के जागृत होने पर मन का ऊहापोह स्वतः

शान्त हो जाता है। इस स्थिति को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं— माया शक्ति रूप है क्योंकि गति और परिवर्तन जैसी स्थितियों के लिए शक्ति नितांत आवश्यक है। अन्तःकरण मे शक्ति बीज रूप मे रहती है अतः उसमें शक्ति प्रबल रूप में है—यह मानना ही पड़ेगा यह भिन्न तथ्य है कि वह आंतरिक जगत् में किस रूप मे कार्यरत है।

अन्तःकरण में चैतन्य में उत्कर्षण बल है और मन में अपकर्षण बल है। अर्थात् एक (चैतन्य) खेंचकर आगे फेंक देना चाहता है। दूसरा (मन) अपनी तरफ खेंचकर बाहर फेंक देना चाहता है इन दोनो बलो का मध्यान्तर बुद्धि का क्षेत्र है जिसमे मन का आवेश भी शान्त हो जाता है तो चैतन्य की शून्य परिणामी स्थिरता भी मन्द पड़ जाती है।

योग में जो कम योग का भावना है उसमे जो कार्य सुषुम्ना करती है ज्ञानयोग में वही कार्य बुद्धि को करना पड़ता है। जिस प्रकार सुषुम्णा युक्त त्रिवेणी से चलकर मुक्त त्रिवेणी मे जाकर विरत हो जाती है। उसी तरह बुद्धि मन के गुणात्मक संसार का विश्लेषण करके चैतन्य के महासागर में जाकर विरत हो जाती है। योग मे अर्थ से इति तक कर्म को माध्यम माना जाता है ज्ञान योग में ज्ञान को उपकरण बनाया जाता है किंतु ज्ञानयोग अधिक दुरूह पड़ता है इसलिए योग के प्रति अधिक अभिरुचि होती है। दूसरी बात यह भी है कि योग मे अनुभूति प्रखर रूप से होती है प्रत्येक स्तर को लीन होकर पार करना पड़ता है और ज्ञान में आभासिक सत्ता से ही काम चलता रहता है, सकेत से ही सर्वार्थ ग्रहण करना पड़ता है। संसार के रहस्य का अनावरण करना पड़ता है जो वास्तविक ज्ञान है और कर्म पर से ज्ञान का पर्दा हटने पर निष्कर्मता प्राप्त हो जाती है। इस सारे विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 'तत्'—शब्द से जिस अवाच्य को बताया गया है उसे अहम् से जाने तो सधाक के रूप में स्व साक्षात् कर सकेंगे और साध्य के रूप में उस शून्य को आत्मसात् कर पायेंगे।

पुरश्चरण का आशय

च्यवन प्रास पाने की विधि यह है कि दस फीट गहरा गढा खोद कर उसमें कुटिया बना कर रहा जाय, बाहर की हवा और धूप से सीधा सम्पर्क न रहे तब च्यवन प्रास का गुण और प्रभाव प्रकट होते है, तभी कायाकल्प होता है। इसे शास्त्रीय शब्दो में कुटी प्रवेश और आधुनिक शब्दो मे आइसोलेशन कहते हैं। यो तो प्रकृति ने प्रत्येक वस्तु को आइसोलेटेड किया है। किन्तु वह आइसोलेशन बहुत संवेदनशील है। जो बाह्य प्रभावों को ग्रहण भी करता है और वातावरण को प्रभावित भी करता है। प्रकृति की इस पद्धति के पीछे विश्वभाव रहा है। वह सबको समान रख कर एक स्तर को कायम रखना चाहती है। जीवन का हर दृष्टि से स्वर्णयुग वह हमें प्रारभ में देती है, पर उस समय हमारी चेतना कुन्द रहती है, शरीर अक्षम रहता है, बुद्धि निर्मल होकर भी विकसित नही होती अन्यथा रागद्वेष मुक्त परमहस का दिव्य भाव और महावीर का अजगरी व्रत इस अवस्था मे सहज भाव से सिद्ध हुआ रहता है। वैचारिक आइसोलेशन बचपन में रहता है किन्तु जितना हम औरों को प्रभावित करने की क्षमता प्राप्त करते है उतने ही प्रभावित होने की शक्ति भी पा जाते है। भावुकता हमारे मानसिक आइसोलेशन का मापक शब्द है।

महर्षि पतञ्जलि ने इस सिद्ध अवस्था जिसे आइसोलेटेड, केन्द्रीकृत या ऐसे ही शब्द से कह सकते हैं, के लिए कहा है कि यह व्यक्ति को जन्म से मिला करती है, किन्तु मनुष्य यदि चाहे तो अपने एक निष्ठ प्रयास से

अर्जित भी कर सकता है। विचित्र शक्ति तो व्यक्ति को अनायास भी मिल सकती है किन्तु ऐसे लोग विरले ही होते हैं। अधिसंख्य लोगों को प्रयास करके, साधना के माध्यम से प्राप्त करना पड़ता है और साधना का अधिकारी होने के लिए बालवत् निर्मल होना पड़ता है।

हमारी जिस विकसित अवस्था पर हम इतराते हैं अथवा जिस सामाजिक जीवन के सुखों पर हम गर्व करते हैं उसका तात्त्विक विश्लेषण करने पर पछतावे के सिवा कुछ नहीं मिलता। अनावश्यक आग्रहों, घटनाओं, दबाव और आरोपों को झेलते-झेलते हमारे मन का यह हाल हो जाता है जैसा अफीम खाते अफीमची का। कितनी बड़ी विडम्बना इस युग की और सामाजिक जीवन की है कि हम हमारे सुख को पूरी तरह भोग नहीं पाते, वासना का विस्तार हमारे आनन्द को निर्बंध नहीं रहने देता। एक क्षुद्र-सी वस्तु पाकर बालक किलकने लगता है; मिट्टी के घरौंदों से खेल कर तृप्त हो लेता है, बादों की कल्पना का पूरा आनन्द ले लिया करता है। *अफसोस ! यह समझदारी, यह हमारी सामाजिक भावना और* यह देखा देखी हमें क्रूरता का आधान पात्र बना देती है और हम आनन्द-बोध से दूर होते चले जाते हैं।

साधना की पहली शर्त है निश्छलता, शिशु की-सी सरलता। इस सरलता को पाने के लिए साधना करनी होती है याने बाह्य तनावों और आग्रहों से मुक्त होने के लिए यम-नियम का पालन करना पड़ता है मन की बहिर्मुखी विमर्षणशीलता को मंत्र में केन्द्रित करना पड़ता है। यह स्थिति जिस दिन प्राप्त हो जाती है उसी दिन हमारा कायाकल्प हो जाया करता है।

सामान्य अवस्था में हमारे अन्तःकरण में गुणों की धारायें एक क्रमिक रूप में उठती रहती हैं, यह प्रकृति की आवश्यकता कि वा व्यवस्था है। तमोगुणी धारा जब प्रखर हो जाती है तो हम तो जाते हैं, रजोगुणी प्रवाह में हम क्रियाशील होकर विविध कामनायम आवेग भोगते हैं सत्वगुणी धारा के प्रभाव में आकर हम परोपकार, आत्म चिंतन, भगवत् आराधना करते हैं। *तमोगुण विराम है, सत्वगुण स्वतन्त्रता है और रजोगुण क्रिया* का प्रचण्ड तूफान है।

यह प्रकृति का चक्रवात अपनी स्वयं सिद्ध व्यवस्था है। संगति के कारण इस प्रकृति के क्रम में व्यतिक्रम होने पर डाकुओं, पुरपीड़कों, हत्यारों, कामियों, साधुओं आदि का वर्गीकरण किया जाता है। यदि व्यक्ति अपनी सीमा में ही रहता तो उसे आनुपातिक रूप से सत्व गुण के हल्केपन और उन्मुक्तता का सुख भी भोगने को मिलता किन्तु सामाजिकता के मोह ने उसे दूसरे और तीसरे दर्जे का ही रख दिया।

हमारे पूर्वज आरण्य रहे थे। सभी वर्ग के लोग आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत आइसोलेशन का आनन्द भोगने आया करते थे। विचारों की प्रौढ़ता और सांसारिक अनुभवों का संग्रह करने के बाद जब व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं के बंधन से मुक्त होकर सन्यासाश्रम के सात्विक शिशुत्व को भोगता था तो जीवन का अन्तिम भाग किसी भी प्रकार के मोह जनित दुःख से मुक्त होकर समत्व के विराट् से एकाकार होने का सुख बन जाया करता था।

उस व्यवस्था में ब्राह्मण एक वर्ग था, एक व्यवस्था थी जो आइसोलेशन का प्रकट उदाहरण थे। हम आज कितने ही स्वच्छ और स्वस्थ रहना चाहें हमारे इतस्ततः छा रहे राजसी और तामसी विचारों का प्रबल आघात हमारे अन्तःकरण पर चोट मारता है, हम अनचाहे, अपनाने दैन्य से घिर जाते हैं, या काम, क्रोध जैसे विकारों का शिकार बन जाते हैं। अगर हम हमारे हाल में मस्त रह पाते तो प्रकृति मां हमें अपनी संवेदनशीलता से पालती हम सीधे उसके राज्य में उसी की प्रजा बनकर रहते किन्तु उसी प्रकृति के उदात्त स्तर को (बुद्धि और उत्कृष्ट देह रचना) को पाकर हम उसके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं अपने आपके प्रति षड़यन्त्र रच रहे हैं। प्राकृतिक संवेगों को हमें भोगना चाहिए था जबकि हम उनके दास हो चुके हैं।

मन्त्र साधना इन संवेगों पर विजय प्राप्त करने का पारम्परिक प्रकार है। जिन लोगों ने साधना की है उनसे कोई पूछे। अपने मन्त्र की शक्ति को प्रकट करने के लिए जो अनुष्ठान किया जाता है उसकी चरम परिणति होती है साधक की मन्त्रमयता। हमारे जीवन क्रम में थोड़ी भी असंगति रह जाने पर हम सिद्धि के वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाते हैं।

आनन्दमयता हमारा स्वाभाविक अधिकार है, सामाजिक व्यवस्था और संगति के प्रभाव से हम हमारे अधिकार से च्युतकर दिये जाते हैं उसी अधिकार को प्राप्त करने के लिए आइसोलेशन किया जाता है। हम कहने को कह देते हैं कि अमुक मन्त्र का इतना जप कर लेने पर भी कोई सफलता नही मिलती इसके पीछे होने वाले आधारों को नही देखते।

शास्त्र कहता है—देवो भूत्वा देवं यजेत—देवता बन कर देवता को पूजना चाहिए। स्वयं के (साधक के) देवता बने बिना देवता की आराधना सांगोपाग नही होगी। बाह्य संदूषण और पर्यावरण के प्रभाव से मुक्त हुए बिना देवत्व की सिद्धि नही होती और देवत्व स्थान प्राप्त हुए बिना मन्त्र के वैभव से एक रूप नही हुआ जा सकता।

पुरश्चरण जैसा प्रयोग च्यवन प्रास के द्वारा कायाकल्प करने जैसा ही है। साधक यदि काम्य कर्म के लिए नैमित्तिक अनुष्ठान कर रहा है, उसमें सफल नहीं हो रहा (जबकि असफलता के आसार न के बराबर रहते हैं। तो भी साधना करते समय सत्त्वगुण के उदय एव आत्मलोक के अद्‌भुत सौन्दर्य के अनुभव मात्र से व्यक्ति कृतकृत्य हो जाया करता है। इस प्रकार के अवाच्य आनन्द की अनुभूति ही अपने आपमे सिद्धि रहा करती है।

उपासक के लिए नियत दिनचर्या एक प्रकार का सम्पूर्ण आइसोलेशन है। भोजन, वस्त्र शयन, चर्चा आदि सभी विषयों और व्यवहारों का निर्धारण किया हुआ है जिसका पालन करना अनिवार्य रहता है। माला, आसन, दिशा, मुद्रा, प्रसाद, पुष्प आदि के लिए मन्त्र अनुरूप या हमारे नैमित्तिक कार्य से संगति रखे रहने की व्यवस्था इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि हमारा आइसोलेशन निश्छिद्र रहे और अपेक्षित शक्ति का स्वर प्रकट हो सके।

माना आज के युग मे ऐसी व्यवस्था संभव (हरेक व्यक्ति के लिए) नही हो पाती कि पूजा का अलग कमरा हो, उपासना करते समय स्वच्छ-निर्मल वस्त्र आसन प्रयोग में लाया जाय, भोजन हल्का और पवित्र विचार वाले व्यक्ति द्वारा बनाया गया हो। इन सारी सावधानियों को रख पाना कठिन रहता है जबकि इन सावधानियों से ही मन्त्र का जागरण होता है।

हम शुद्धता के रूप और प्रभाव से एक रूप हो जाय तब अशुद्धता का गुण और प्रसार समझ पायेंगे। यह बात असंदिग्ध रूप से स्वीकृत है कि आहार से व्यक्ति का बहिरंग पोषित होता है और अन्तरंग भावना, विचार, कल्पना तृप्त होता है। दोनों शरीरों का कार्य-व्यवहार, आहार-व्यवहार भिन्न है तदापि दोनों परस्पर प्रभावित होते हैं क्योंकि स्थूल में वैचारिक सूक्ष्मता भी निहित रहती है। जिस तामसिक भोजन को हम चटखारे लेकर खाते हैं उसका हमारे अन्तः शरीर पर प्रभाव पड़ता है तो सात्विक भोजन को बनाने वाले की विचारधारा भी भोजन में प्रवाहित हो जाती हैं। साधना के स्वतन्त्र कक्ष का पर्यावरण हमारे घर के सामान्य कक्ष (जहां सभी तरह के लोग आते हैं और बैठते हैं) से भिन्न होता है। हमारे कमरे में बिछे दूधिया रंग के कपड़ो में जो हल्कापन और पवित्रता है वह हमारे समान स्तर वाले व्यक्तियों के सम्पर्क से ही अक्षुण्ण रह सकती है इस तथ्य को अनुभव करने वाले व्यक्ति एक बार परीक्षण के लिए ही स्वच्छ निर्मल रहने का प्रयास करें वे बहुत संवेदनशील होकर व्यक्तियों और स्थानों के सम्पर्क में आकर अपने विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करें तो पायेंगे कि किसी जगह जाने पर उनके मन में अकारण तनाव होने लगता है, वे किसी की निन्दा करने का प्रसंग ढूढने लगे हैं, अथवा किसी व्यक्ति के पास बैठकर वे अकारण प्रसन्नता या कुण्ठा का आवेश या संतुष्टि का आवेग अनुभव करने लगे हैं। कभी कहीं खाना खाने के बाद उनके विचारों में परिवर्तन होने लगता है। ये सारे परिवर्तन सूक्ष्म जगत की बातें हैं जिनको हमारी संवेदनशक्ति ग्रहण कर लेती है अथवा ये प्रबल होने पर बलात् हमारी प्रकृति को प्रभावित कर देते हैं। बाह्य प्रभावों से अप्रभावित रहना भी एक सिद्धि है जैसे अगस्त्य वातापी राक्षस को खाकर भी अप्रभावित भी रहे थे किन्तु हमारे जैसे सामान्य व्यक्ति को आइसोलेटेड वातावरण बना पाना और भी दुष्कर है।

शास्त्रों ने इसीलिए साधना के लिए अरण्य शव, श्मशान और श्यामा पीठ का निर्देश दिया है और कुछ नहीं तो देवालय में बैठकर उपासना करने की व्यवस्था दी है रात्रि को साधना का उत्तम काल बताने के पीछे भी यही कारण है कि उस समय संसार में तमोगुण की आवरक शक्ति छा

जाती है, रजोगुण के चक्रवात शान्त हो जाते हैं, ऐसे समय में विचारो का प्रवाह अप्रभावित रह सकता है।

मानसिक जप-ही-जप की श्रेणी मे आता है। सस्वर या श्रव्य ध्वनि के रूप में जो कुछ कहा जाता है उसमे दो प्रकार की शक्ति होती है या यह कहें कि इस प्रकार के वाचन मे पहला शक्ति का आधार ध्वनि है ध्वनि का अपना रूप और समता तो होती ही है, इसलिए कोई भी श्रव्य ध्वनि अपने प्रभाव क्षेत्र मे किसी-न-किसी प्रकार का दृश्य अथवा अनुभूतिगत प्रभाव डालती ही है। किसी की कराह या चित्कार, पीडा या आतक के भाव उत्पन्न करते ही हैं हालाकि उनमे सार्थक शब्द नही होते। नदी का कल-कल किसे सुखकर नही लगता, या उसी नदी का भीषण गर्जन किसे भयातुर नही करता! ये ध्वनि के ही प्रभाव है।

मूल ध्वनि में ही जब ऐसी शक्ति होती है तो मानवीय देह से ध्वनि होकर यह अत्यन्त मन्द रहने पर भी विलक्षण प्रभाव डालेगी ही। कारण यह है कि मानवीय भाषा मे प्रयुक्त शब्दों की अपनी लय है और लय का संयोजन प्रकृति के सूक्ष्म स्तर को प्रभावित करता है। विश्व में आज तक आविष्कृत विभिन्न प्रकार की राग-रागिनिया ध्वनि के लय पक्ष पर आधारित हैं। संस्कृत के छन्दों का तो नामकरण भी लय के प्रतीकों पर किया गया है जैसे शार्दुल विक्रीडित या भुजंग प्रयात छन्द। शार्दुल विक्रीडित का अर्थ होता है शेर की क्रीड़ा और भुजंग प्रयात सर्प की गति का द्योतक है। आश्चर्य होता है ऋषियो की साधना और अन्तर्दृष्टि पर कि उन्होने लय संयोजन को व्यावहारिक भाषा के प्रतीकों मे उपस्थित

करने की सफल चेष्टा की।

कोई असूया ग्रस्त होकर भले ही इसे न माने अन्यथा इसमें कोई सन्देह नहो कि भारत देवताओं की विहार स्थली है और संस्कृत देवताओं की भाषा। देववाणी कहने में दोनों ही रहस्य छुपे हुए हैं जिसे देवता बोलते हैं अथवा जिसमें देवताओ को व्यक्त किया जा सकता है। विश्व की अन्य भाषाओं में वहां के भौगोलिक वातावरण का प्रभाव पड़ना अनिवार्य होता है इसलिए जंगली, पहाडी, रेगिस्तानी, सागर के निकटवर्ती प्रदेशों की मूल भाषाओ मे प्रकृति के बाह्य आवरण का प्रभाव उन भाषाओं शब्दावली, ध्वनि और लय पर पडना अस्वाभाविक नहीं है किन्तु भारत सन्तुलित प्रदेश यहां प्रकृति की सारी ही विशेषतायें विद्यमान हैं। इसलिए यहा की भाषा मे सारे गुणों का अनुपातिक संयोजन होना भी अस्वाभाविक नही है।

हम भारतवासी भाषा की उत्पत्ति संगीत से मानते हैं और वह संगीत भी सरस्वती की वीणा और शंकर की डमरू से प्रस्फुटित होने वाला। इसीलिए विश्व में सस्कृत ही ऐसी प्राचीनतम भाषा है जो विसर्ग और अनुस्वार की भाषा है। अनुस्वार संगीत की प्रारंभिक स्थिति है जहा बिंदु नाद का रूप धारण करती है। विज्ञान की मान्यताओ और हमारी मान्यताओं में कोई विशेष अन्तर नही है। हां, चिन्तन और अनुसंधान में एक मौलिक अंतर अवश्य है जिसके कारण आज का समग्रविकास जड़वादी विस्तार बन गया है अन्यथा नाद और बिन्दु की क्रिया प्रतिक्रिया को प्रकृति मे अति सूक्ष्म स्तर पर होने वाले विक्षोभ को विज्ञान भी मानता है किंतु उसके पास अपनी स्वतंत्र शब्दावली है और इसे समझाने की एक निराली जडवादी विधि भी।

मनुष्यकृत ध्वनि को श्रवण योग्य होने के पहले कई स्तरो पर झंकृत होना पड़ता है और यह झंकार कर्ण की परिसीमा से परे होने के कारण केवल अनुभव मन के सीमा क्षेत्र मे आता है, ऐन्द्रिय क्षेत्र मे नही। इन कंपनो को हम कर्णातीत तरगों के रूप मे मान लें तो कोई तात्विक आपत्ति नही होनी चाहिए क्योंकि जो शब्द कण्ठ मे आघात पाकर श्रव्य रूप मे व्यक्त होगा वह नादित तो हो ही चुका है, हमारे आंतरिक शरीर में उसे

प्रकट होने के सारे काम हो ही चुके हैं।

मेरा अपना विश्वास है कि शब्द की यह स्थिति कर्णातीत है और कर्णातीत ध्वनि तरंगों की शक्ति से आज का विज्ञान परिचित है। यह दूसरी बात है कि आज का विज्ञान इस पर विश्वास नही कर रहा था उसके पास ऐसे उपकरण नही हैं जिनसे इन कर्णातीत तरगो को नाप सके। विज्ञान की इस मान्यता में (कि मनुष्य के कण्ठ से कर्णातीत तरंगें उत्पन्न नही की जा सकती) सशोधन की गुंजाइश हो सकती है।

अगर ये विज्ञानवादी कण्ठ से व्यक्त होने वाली ध्वनि के मूल उमंग तक भारतीय विधि से पहुच पाते तो कर्णातीत शब्द की सीमा से बाहर ही मनुष्य को नही रखते हमारे यहां कण्ठ से टकराये शब्द को बैंखरी वृत्ति का विषय मानते हैं और बैंखरी वृत्तिनितांत स्थल होती है।

हम मंत्र के जप, जपने की विधि और उसके प्रभाव पर विचार कर रहे थे। प्रारंभ से यह स्पष्ट किया जा चुका है श्रवणयोग्य ध्वनि में स्तोत्रों का पाठ किया जाता है, मन्त्रों का नही। मंत्र मनन से प्राप्त निष्कर्ष हैं, मंत्रो का सीधा सम्बन्ध मन से है मंत्रों को गुप्त रखने की मर्यादा है इसलिए वे जपे ही जाते हैं।

जपने में हम लोग ओंठ हिला कर जपते हैं इसे उपांशु जप कहते हैं। उपांशु जप मध्यम श्रेणी का माना जाता है इसमें शक्ति उतनी जल्दी और तीव्र गति से उत्पन्न नही हो पाती क्योंकि हमारे आभ्यन्तर मे उत्पन्न हो रही ध्वनि को मुंह से निकलने के लिए बाध्य किया जाता है उसमें वायु-तत्त्व का संयोजन हो जाता है इसलिए वह स्थूल हो जाता है।

मंत्र शब्द स्वरूप होता है और शब्द आकाश तत्त्व का गुण है, उसे श्वास का सम्पर्क देने पर वायुतत्त्व का आधार मिल जाता है। शब्द को अपने रूप मे रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अन्य तत्त्वों के स्पर्श से मुक्त रखा जाय और यह तभी संभव है जब हम मंत्र जप के समय ओंठों का हिलना बंद करदें।

प्रायः ओठ बन्द करके जप करने वाले श्वास के लेने या निकालने के समय मंत्र की शब्दावली को अनुभव करके यह मान लेते हैं कि मानसिक जप हो रहा है किन्तु यह मानसिक जप नही है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर

हमें स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि इस क्रिया में भी वायु तत्त्व का संयोग हो रहा है।

प्रायः श्वास को कण्ठ में टकरा कर हम कोनो को सवेदनशील बनाकर हम उस टकराहट की लय को ही मन्त्रो के अक्षरों के रूप मे समझ लेते हैं यह तो वैसा ही हुआ जैसे कोई व्यक्ति बांसुरी बजाना नही जानता और उसके सुरों को नियंत्रित करके राग निकालने के बजाय जीभ या गले से राग निकालने की कोशिश करता है। ऐसी अवस्था मे हमे कुंभक में जप का अभ्यास करना चाहिए। हमारे श्वास की हम चार स्थितियां करते हैं, पहली, श्वास को भीतर खेंचना इसे पूरक कहते हैं। दूसरी श्वास को फेंफड़ो मे रोकना इसे कुम्भक कहते हैं। तीसरी श्वास को बाहर निकालना इसे रेचक कहते हैं। चौथी, श्वास न लेना (श्वास को बाहर निकाल कर वापस न खेंचना) इसे बहि. कुंभक कहते हैं। बहिः कुंभक न उपयोगी है, न सरल ही इसमें हमारे शरीर मे प्राणवायु की मात्रा बहुत कम हो जाती है इसलिए जल्दी ही विकलता बढने लगती है।

कुंभक के समय मंत्र के जप का अभ्यास करने से मानसिक जप सभव हो पाता है क्योंकि कुभक की अवस्था मे वायु का बाह्य व्यापार बन्द हो जाता है और कण्ठ मे टकराहट की स्थिति नहीं होती इसलिए शब्द को आकाशीय आधार स्पष्ट रूप से मिल जाता है। हालांकि तत्त्वों की सीमा से परे जाने पर ही शब्द का वास्तविक रूप और क्षेत्र मध्यमा पश्यन्ती वृत्तियों के स्तर पर आभासित होता है और इस प्रकार किये जाने वाले जप मे दूसरे तत्त्वों की उपस्थिति क्षीण हो जाती है।

फिर भी यह स्तर तत्त्वो की सीमा या प्रभाव से मुक्त नहीं है क्योंकि इनसे आगे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आदि के चक्रों मे पृथिवी आदि तत्त्वों के प्रभाव सूक्ष्म एव प्रबल रूपों में विद्यमान रहते हैं इसलिए अगला द्वार और पार करना रहता है।

चक्रों के द्वारों को पार करना बहुत कुछ ऐसा ही है जैसा योग मार्ग द्वारा समाधि के द्वार पर पहुंचना किन्तु इस मार्ग को पार करना मोक्ष कामियों अथवा आत्म साक्षात्कार करने वाले व्यक्तियों का लक्ष्य होता है सांसारिक कार्यो (काम्य कर्मो) के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानो में जप

का वही स्तर पर्याप्त रहता है। तत्वों से शक्ति स्तर तक अथवा तत्वों और शक्ति के स्तरों से तारतम्य बैठाने तक ही इन मंत्रों की साधना की जाती है। शक्ति प्रकट होकर तत्वों में यथेच्छा परिवर्तन कर दे यही हमारा प्रयोजन होता है।

प्रारंभ में हम पूरक प्राणायाम में मंत्र का जप का अभ्यास करते हैं। उसमें हमें आभास करने के लिए शब्द के सिवाय किसी अन्य तन्मात्रा का आधार नहीं रहता इसलिए यही मानसिक जप की वास्तविक आधार भूमि और अवस्था है। हो सकता है, प्रारम्भ में हम ऐसा जप न कर पायें किन्तु थोड़ा प्रयास करने पर संभव हो जाता है। करना यह पड़ता है कि कुंभक द्वारा स्तब्ध हुए देह में शक्ति स्तर को उद्दीप्त करना पड़ता है। शक्ति को हम जान-समझ नहीं पाते इसलिए उसे इच्छा के रूप में प्रयोग करना पड़ता है। हम बलात् यह सोचते हैं कि हमारे देह में अभीष्ट मंत्र ध्वनित हो रहा है। सोचने में जितना आग्रह होगा उतना ही स्पष्ट मंत्र का उच्चारण होगा और इसे हमें केवल आभासिक रूप में ही जानना पड़ेगा। थोड़े अभ्यास के बाद ही मंत्र का जप हमें स्पष्ट सुनाई देने लगता है और शनैः शनैः श्वास के साथ इसका सम्बन्ध छूट जाता है। श्वास के आने जाने का ज्ञान हमें नहीं रहता क्योंकि मन अब एक ही तत्त्व के क्षेत्र में सीमित होने लग गया है।

यह हमें निश्चय से मान लेना चाहिए कि सूक्ष्म में जो कुछ भी होगा वह मन के माध्यम से ही होगा। प्रकृति के मायामाय संसार तक मन की गति है, महामया के रूप को पहचानने के लिए भी मन ही तैय्यार होता है पर उसकी कृपा और इच्छा से ही। भौतिक सिद्धियों के लिए किए जा रहे अनुष्ठान शक्ति और गुणात्मक स्तर से आगे नहीं जाते इसलिए हमें शक्ति के प्रकट होने की क्षमता कि या भूमिका उत्पन्न होने देनी है जिससे गुणात्मक रूप शक्ति के माध्यम से तत्त्व स्तर पर आ जाय स्मरण रखना चाहिए मारण-मोहन-वशीकरण जैसे कर्म गुणों की ही लीला है जिसे स्थूल में हम तत्त्वों की बात मान लेते हैं।

इस विधि से जप करने पर हमें कई तरह के अनुभव होते हैं। कभी हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमारे भीतर कोई दूसरा अस्तित्त्व है वह मंत्र

आज्ञाकारी भी है। आज्ञाकारी बालक की तरह विषयान्तर से लौटकर आ जाता है। गीता इसके लिए कहती है—

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्यण च गृह्यते"

मन को एकाग्र करने के लिए दो ही मार्ग हैं—अभ्यास और वैराग्य। वैराग्य की बात हम नही करते, हमें अभ्यास के माध्यम को अपनाना है। मन को धीरे-धीरे इसके लिए तैय्यार करना है कि वह मंत्र जप में रमने लगे।

यहां प्रश्न यह उठता है कि मन जब अन्य विषयों मे चला जाता है तो मंत्र का जप होता है कि नही ? इसके उत्तर में हमारा यह मानना है कि जप तो हो रहा है किन्तु उसका फल मिलने किंवा शक्ति के रूप में प्रकट होने वाली बात नही है।

जप हो रहा है या होता रहता है—इस तथ्य को समझने के लिए हम उस प्रक्रिया को समझ लें जो शब्द के उत्पन्न होने मे हमारे आभ्यान्तर शरीर में हुआ करती है। जैसे ही हम इच्छा करते हैं—हमारे मस्तिष्क (सहस्रार चक्र) मे एक प्रकार का विक्षोभ होता है और वह विक्षोभ तर-गायित अवस्था मे नीचे के शरीर मे आकर षट् कमलो मे आन्दोलन उत्पन करता है यही आन्दोलन कण्ठ मे टकरा कर भाषा का रूप ग्रहण करते हैं।

जब हमे कोई भी मंत्र याद हो जाता है तो इसका अर्थ यह होता है कि हमारे देह मे स्थित कमलो का कम्पन क्रमिक रूप में होने लगता है। इसे हम वीणा के उदाहरण से समझ सकते हैं मान लिया हमारे पास वीणा है और हम उसे बजाना चाहते हैं। बजाने की इच्छा के साथ ही हमारे हाथ सक्रिय हो जाते है और यथेच्छा राग को क्रमबद्ध रूप से तारो पर झकारने लगते हैं।

स्मरण करने मे की बात यह है कि हमारे शरीर में स्थित कमलो (कमलों के दलों के अनुसार) भिन्न-भिन्न अक्षर स्थित रहते हैं अर्थात् उनको स्पन्दित होने पर ही वे अक्षर व्यक्त होते हैं। किसी भी मंत्र के जपने पर उनमें क्रमबद्ध स्पन्दन शुरू हो जाता है और वह तब तक चलता रहता है जब तक हम उसे रोकते नही ऐसा नही होता तो किसी स्तोत्र पाठ में वह स्थिति नही आती जब मुंह से उसका सही उच्चारण होता जा रहा है

और मन से हम अन्यत्र विचरण करते रहते हैं।

आशय यह कि हमारा मन कर्ता नही है, वह इस प्रकार के स्पन्दनों को प्रेरित नही करता बल्कि उनको महसूस करता है सक्रिय साक्षी के रूप मे भोगता है। मन को चेतन के अवतार की भूमि कहा जाता है। इसके जुड़ने पर ही हमारी चेष्टायें सार्थक होती हैं। सकल्प-विकल्प अथवा कामनाओ का घटाटोप बुनना मन का ही चमत्कार है।

याद हो जाने पर मन का सम्बंध टूट जाता है। यों भी कहा जा सकता है कि कार्यपालिका का प्रमुख पदाधिकारी मन होता है और उसकी उपस्थिति ही किसी भी कार्य के परिणाम को सार्थक बनाती है। हमारे आन्तरिक शरीर मे ध्वनित हो रहे मन्त्र का फल मन के माध्यम से ही मिलना है इसलिये मन का उसमें जुड़े रहना आवश्यक है अन्यथा फल नहीं मिलेगा। फल अथवा परिणाम मिलने की सारी तैयारी पूर्ण हो जाने पर भी यदि सका उसके साथ नही रहा है तो अवरोध खड़े हो जायेंगे मन पर मले हुए मल (कार्मण मल) नही उतरेंगे तो शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होगा !

कई लोग साधना करते समय विक्षिप्त केवल इसीलिये हो जाते हैं कि शक्ति के स्रोत को वाह्य जगत् मे इच्छित दिशा और मात्रा में काम करने के लिये ग्रहण करके छोडने वाला (ट्रासफार्मर) मन उतना समर्थ और सवेदन शील नही हुआ। असफल इसलिये होते हैं कि मन पर छाया हुआ मैल साफ नही हुआ जैसे किसी मशीन में कचरा या काई जम जाने के कारण वह चल नही पाती। साराश के रूप मे हम यह मान सकते हैं कि मन को शक्ति का आघात सहन करने के लिये तैय्यार होने की एक शर्त है कि वह मन्त्र के जप से एक रूप हो। आयुर्वेद मे सहस्रपुटी और शतपुटी भस्म बनाना इससे मिलती जुलती ही प्रक्रिया है।

प्रयोजन विशेष के लिये किये जा रहे अनुष्ठान मे भी मन को निर्मल करना पड़ता है किन्तु उसमे अन्य प्रकार के मलों के रहते हुए भी काम चल सकता है जैसे किसी घड़ी का अलार्म और पेण्डुलम दोनों खराब होने या उतार देने के बाद भी चलती रहती है। रजोगुणी तमोगुणी और एक अश में सत्वगुणी प्रयोजनो के लिये जो भौतिक लक्ष्यपरक अनुष्ठान किये

जाते हैं उनमें मन का सम्पूर्ण रूप से निर्मल होना आवश्यक नहीं होता, सागर मन्त्र के प्रयोगों मे तो सब कुछ होते हुए भी काम हो जाता है किन्तु आत्म-साक्षात्कार करने के लिये जो साधना करते हैं उसमे मन को निर्मल से निर्मलतर और निर्मलतम करना पड़ता है क्योंकि उसमें थोड़ा-सा भी कचरा या गन्दगी बहुत अधिक हो जाती है। हमें सारी देनदारियाँ पूरी करनी होती हैं, एक पैसे का ऋण भी ऋण रह जाता है।

अनुभव में जिन्हें हम कल्पना कहते हैं वे सत्व, रज और तमोगुणों की अभिव्यक्तियाँ हैं जिनको मन ग्रहण कर लेता हैं। कल्पनायें तरगो के या अनुभूति के रूप मे प्रचलित होती हैं इनको जब भाषा का रूप मिलता है तो ये स्थूल हो जाती हैं और कण्ठ में आते आते तो अत्यन्त स्थूल हो जाती हैं। मन प्रेरित भी होता है और प्रेरित भी करता है। गुणात्मक जगत् का वह मठाधीश भी है और सेवक भी।

मन्त्र जप के लिये हमारा जब सुषुम्णा स्वर चल रहा होता है तब अनुकूल समय रहता है सुषुम्णा स्वर नासिका के दोनों छिद्रों मे समान रूप से श्वास के आने को कहते हैं। यद्यपि स्वरों पर विचार करना स्वर शास्त्र का कार्य है तदपि मन की एकाग्रता सुषुम्णा स्वर के चलने पर सरल रहती हैं। श्वास को जप का आधार बनाने की बात हम नहीं कहते किन्तु उससे भूमिका बनाने में सुविधा रहती है। सुषुम्णा स्वर के चलने पर अन्य तत्वों मे मन्दता और आकाश में प्रखरता आ जाती है। हम शब्द के रूप में आकाश तत्व की ही उपासना करते हैं और आकाश को सत्वगुण का आधार बतलाया गया है।

वास्तव मे यह विषय प्रायोगिक है, इसे कोरे सिद्धान्त के रूप में समझने से कोई लाभ नहीं होने का। शब्दो के संयोजन, उदाहरण और युक्तियो से इस विषय का मर्म नहीं समझा जा सकता, इसे केवल प्रायोगिक रूप मे करने पर ही जाना जा सकता है। ऊपर हम जिन स्थितियों का परिचय प्राप्त कर आये हैं वे हमारे लिए सहायता और मार्ग दर्शन करने वाले बिन्दु हैं जिनका उपयोग मानसिक जगत् में जाने पर हो सकता है।

इस स्तर पर किये गये जप से रजोगुणी सिद्धियाँ शीघ्र मिल जाती हैं। पृथ्वी, जल और तैजस तत्त्व का स्थूल प्रभाव कम हो कर वायु तत्त्व

की प्रबलता होती है वायु की सूक्ष्म शक्ति प्रकट होने लगती है। काम्य कर्म करने वाले किंवा किसी विशेष लक्ष्य से प्रेरित होकर अनुष्ठान करने वाले अपना कार्य सम्पन्न होने पर यहाँ से वापस हो लेते हैं किन्तु जो लोग सत्व गुण की उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त करना चाहते हैं वे इस केन्द्रीकरण का लाभ उठा कर आगे बढते हैं। कई बार यही केन्द्रीकरण उनको अनायास भाव से आगे की भूमिका मे ले जाता है।

मानसिक जप का यह सूक्ष्म होता हुआ रूप बाहर मे फैले तत्वों का हमारे भीतर फिर से साक्षात्कार कराता है। किसी सद्गुरु की कृपा और सन्निध्य हमें सुलभ रहता है तो हमारी साधना निर्वाध रूप से चलती रहती है अन्यथा हम कल्पित भय से पीड़ित होकर घबरा जाते हैं और उस समय के अनुभवों से साहस खो देते हैं। भयभीत होने की स्थिति तभी आती है जब हम परिपक्व नही होते, ये प्रतीतियाँ भय जनक अवश्य हो सकती हैं पर इनसे कोई अहित नही हो सकता बशर्ते साधक के पास विश्वास का बल हो और वह अविचल-अश्रान्त भाव से अपना कार्य करता रहे। शक्ति का जागरण होने से पहले व्यक्ति मे पात्रता होनी आवश्यक है और प्रत्येक नई अवस्था को प्राप्त को प्राप्त करने वाले संक्रमण काल में अनेक प्रकार की आशंकायें और जोखिम रहते ही हैं इसीलिये किसी के मार्ग दर्शन में अथवा अपने स्वयं के साहस, संकल्प और शुद्ध प्रयास के सहारे कार्य करने पर ऐसी संक्रामक परिस्थितियो से सरलता से उबरा जा सकता है।

यह आशय नही है कि इस सन्धि काल को पार कर असमय होने वाली असावधानी से बहुत बडा अहित नही हो सकता, हो सकता है पर उसके लिये हम, हमारी अस्वस्थता और साहसहीनता ही जिम्मेदार है। असल मे यह चेतन सत्ता के क्रिया कलाप हैं, इनका कोई एक सिद्धान्त नही हुआ करता, एक ही तथ्य अनेक रूपो में हमें भासित हो सकता है। जैसे चन्द्रमा को हम निशाकर भी कह देते हैं क्योंकि यह रात किया करता है, मृग-लाछन भी कहते हैं क्योंकि इसमे हरिण जैसा धब्बा दिखाई देता है, और हिमकर भी कह लेते हैं क्योंकि इसकी किरणों मे बर्फ जैसी शीतलता रहती ऐसे ही दूसरे नामों का अनुभूति जन्य आधार है। चन्द्रमा एक ही है पर उसे महसूस करने के आयाम भिन्न हो जाते हैं ठीक उसी तरह साधना करते

समय शक्ति का प्रकटीकरण होगा किन्तु उस अवस्था को प्राप्त करते समय हमारी मानसिकता क्या रहेगी—इस संबंध में कोई दृढ़ या सुनिश्चित बात नही कही जा सकती। विज्ञान चन्द्रमा को केवल चन्द्रमा कहेगा, कार्बन को कार्बन और अमोनिया को केवल अमोनिया कहेगा क्योंकि वह जड़ है और इस एक सुनिश्चित आयाम वाले संबोधन से ही उसका काम होना है पर भारतीय ज्ञान चेतनावादी है और वह पदार्थ के बाह्य आवरण एवं क्रिया कलाप पर आश्रित नही रहता इसलिये वह उसे सब तरफ से सब तरह से देखता है और अपने अनुभव जनित निष्कर्षों को घोषित कर देता है। साधना करने से पहले इन अनेक विध आयामों का ज्ञान जिसे होता है वह विचित्र अनुभवों से भयभीत नही होता और वही सिद्धि का अधिकारी बनता है।

हम शेर से भयभीत रहते है, हाथी हमें आक्रामक लगता है, उससे साक्षात्कार करना तो दूर उसके नाम मात्र से हम डर जाते हैं। कुछ लोग इनका शिकार करने जाते हैं और शिकार में उसे मार लाते हैं या खुद शिकार हो जाते हैं। इनके लिये दरिन्दे और खूखार जैसे शब्द हमें मिलते हैं क्योंकि इससे अधिक हमारी संवेदना जाना ही नही चाहती। उसी दरिन्दे का एक रूप और होता है और वही उसका वास्तविक रूप है जिसे देखने के लिये हमारी दृष्टि भय मुक्त या किसी भी पूर्वाग्रह से रहित होनी चाहिए। माना वह प्राणी नैसर्गिक रूप से हिंसक है पर उसकी हिंसा की भी एक रेंज है। हमारे में यदि इतनी क्षमता नही है कि हम उसकी हिंसकता से अछूते रह सकें या उसकी हिंसक वृत्ति को प्रकट ही नही होने दें अथवा हम सुरक्षित होकर उसको देख सकें तो उसका सम्मोहक सौन्दर्य देखने का आनन्द हम ले सकेंगे।

मंत्र का भी यही स्वभाव है। संसार की सीमा में आने वाले मारण मोहन जैसे षट् कर्मों की वही स्थिति है जो हमारे जीवन मे शेर, हंस, मोर आदि प्राणियो की है। हंस आकर्षण का प्रतीक है, शेर मारण का और मोर रक्षण का प्रतीक है। इन प्रतीको के मान्त्रिक स्वरूप में एक प्रकार की नैमित्तिक शक्ति पुंजीभूत होकर प्रकट होती है जैसी सप्तशती के प्रथम चरित्र मे देवताओ की आर्त प्रार्थना पर शक्ति आविर्भूत होती है। जो

लोग सांसारिक व्यामोह और आकांक्षा से ऊपर उठ चुके हैं या विरक्त हो चुके हैं उनके लिये ये प्रतीक और इनके शाब्दिक कलेवर रूप मंत्र बालकों के खिलौने मात्र रह जाते हैं। वे शक्ति को इतने छोटे रूप में देखना ही नही चाहते।

मन मे क्रिया है और अनुभूति है। शक्ति का अवतार मानसिक स्तर पर ही पहले होगा क्योंकि तत्वात्मक जगत् से आगे शक्तिमय जगत् का प्रारंभ होता है और हमारे शरीर मे शक्तिमय जगत् का सूचक या निर्वाहक मन है इसलिए मन के प्रसार को नियन्त्रित करके उसकी सहज शक्ति को आन्तरिक यात्रा के लिए प्रयोग करना पड़ता है। जिस प्रकार योग यह कहता है कि इन्द्रियों और उनके अधिष्ठाता मन को नियन्त्रित करके षट् चक्र भेदन की क्रिया सम्पन्न करनी होती हैं यहां भी वही क्रिया करनी पड़ती है। यहां माध्यम शब्द रहता है, योग मे प्राण होता है।

मन की चेष्टाओं को नियत्रित करके जप करने पर हमारे वाह्य अंगों में स्थिरता आ जाती है किन्तु अन्त:करण मे हलचल बढ़ जाती है। थोड़े समय के प्रयास के पश्चात जब अन्त:करण मे शान्ति एवं स्वस्थता होने लगती है तो ये तत्व फिर अपने अनुभूति गम्य और तन्मात्रागत रूप में उपस्थित होते हैं। इसमे यह आवश्यक नही कि पहले पृथ्वी तत्व ही प्रकट हो और फिर जल, तेज, वायु, आकाश। ऐसा क्रम निर्वाह अनिवार्य नही होता। कभी-कभी किसी तत्व का स्तर हम उछाल कर पार कर जाते हैं या कभी किसी तत्व के क्षेत्र को पार करते समय हमें एक प्रकार की शून्यता आ जाती है या कभी हमारे पर्यावरण मे किसी तत्व की अत्यन्त मन्दता हो और उसका अनुभव ही नही हो। ऐसी विविध स्थितियाँ आती अवश्य हैं फिर भी वायु और आकाश तत्व की प्रखर अनुभूति आवश्यक रूप से होती ही है।

पृथ्वी तत्व की तन्मात्रा गंध होती है। ज करते समय हमारी इन्द्रियाँ निष्क्रिय ही रहती हैं मृत नही होती और मन भी सक्रिय रहता है इसलिए एकाग्र जप मे हमें कभी किसी अज्ञात गंध का या कदम्ब कस्तूरी आदि की मदिर गंध का अनुभव होने लगता है जब कि हमारे आस पास इस प्रकार की गंध का कोई आधार भूत कारण नहीं रहता। अपवाद स्वरूप

कभी-कभी दुर्गंध का भी अनुभव हो सकता है जो इस बात का सूचक बनता है कि हमारी विधि में, मन की अनजानी सतह मे या हमारे आचरण मे कहीं न कही कोई कालुष्य रह गया है। ऐसी स्थिति मे हमें उसे शुद्ध करने के लिए प्रयास करना चाहिए, निराश नही होना चाहिए।

जल तत्व की प्रतीति में ठण्ड लगना पानी की धारा का-सा एहसास होना, शरीर में बह रहे रक्त का सन्नाटा महसूस होना जैसी प्रतीतियाँ होती है। शरीर के किसी अंग में, भ्रूमध्य मे या वातावरण में तीव्र प्रकाश का आभास होना तेजस्व का स्तर है। यह प्रकाश चन्द्रमा जैसा शीतल किन्तु सूर्य के प्रकाश से अत्यधिक रूप से तीव्र होता है।

इन तत्वों में पृथ्वी शुद्ध तमोगुणी प्रकृति है। शेप जल और तेज मिश्र प्रकृति के हैं। इससे आगे वायु तत्व आता है जो विरल अणु सगठन एवं गति धर्मिता के कारण अत्यन्त शक्तिशाली है। तत्वों के तन्मात्रा गत रूप मे विशेष अन्तर नही रहता किन्तु उनके बाह्य रूपाकार को देखते हुए वायु मे शक्ति का आवेश अधिक प्रकट एवं प्रखर रूप में हुआ करता है क्योकि यह तत्व माया से आगे वाले स्तर (शक्ति स्तर) के निकट रहता हैं दूसरी बात यह है कि वायु गैसीय अवस्था है और उसमे फैलने की सबसे ज्यादा क्षमता है। मानसिक केन्द्रीकरण की प्रक्रिया में वायु तत्व का अनुभव कुछ अधिक विलक्षण रूप मे हुआ करता है। कभी ऐसा लगता है जैसे हवा के तेज झोंके लग रहे हैं या हल्के झोके लग रहे हैं अथवा हम एक ऐसे चक्र मे फंस गये हैं जिसमें केवल गति है। हमें इस तरह आभास होता है जैसे हमारा सारा शरीर हिल रहा है किन्तु ऐसा बाहर से नही होता। हमारी चेतना अन्तर्मुखी होकर आन्तरिक क्रियाओं का अनुभव करने लगती है इसलिए ऐसा तीव्र अनुभव होता है। साधना काल में होने वाले विविध आभास भी इसी श्रेणी में आया करते हैं। हमारी पूर्व निश्चित अवधारणा और मन्त्रों से बनने वाली रेखा गणितीय आकृति जब शक्ति के आवेश से पूर्ण होती है। तो हम अनेक तरह के अनुभवो, आभासों और प्रतीतियों में से गुजरते हैं। इन आभासों का केवल हमारे से, हमारी अन्तश्चेतना से संबंध रहता है। इसलिए वे केवल हमारे अनुभव में आते हैं, इनको कोई दूसरा देखना चाहे तो देख सकता।

वायु स्तर से आगे बढ़ने पर आकाश तत्व का स्तर आता है इस स्थिति को प्राप्त करने पर व्यक्ति का अन्तर्बाह्य परिवर्तित हो जाता है हमारा व्यवहार इतना सात्विक हो जाता है कि किसी भी प्रकार के कलुष, क्रूर और स्वार्थी भाव का स्पर्श तक नही हो पाता। राजसी और तामसी वृत्तियों का आवेश और कुण्ठायें क्षीण हो जाती हैं। हमारे देह मे विद्यमान पाशविक ग्रन्थियों का स्वाभाविक भेदन हो जाता है। सत्व गुण का नैसर्गिक हल्कापन हमे आनन्द के सागर मे बोरे रहता है। यह सत्व की शुद्ध अवस्था होती है। जागतिक आकर्षण हमारे लिए निरानन्द हो जाते है। हमारा दैन्य स्वतः लुप्त हो जाता है। आश्चर्य की बात यह कि हमारे दैनिक जीवन मे अनेक चमत्कारिक घटनायें घटने लगती हैं, हमारे मे स्वामित्व की भावना का उदय हो जाता है। ऐसे समय मे मां की कृपा का स्मरण रहना ही चाहिए अन्यथा मन फिर बाहर खिसक आता है और जो शक्ति प्राप्त हुई थी उसी के विलक्षण अनुभवो में खो जाता है। आगे की गति रुक जाती है और अर्जित बहुमूल्य सम्पदा का उपभोग करने में हम भूल जाते है।

पहले की अवस्था मे आये सत्व गुण के स्तर मे केवल सत्व था और इसमे विशुद्ध सत्व है। यह कहने की आवश्यकता नही की इस अवस्था में तम की आवश्यकता और रज की चंचलता क्षीण हो जाती है इस अन्तर्मुखता मे व्यक्ति वीणा की झंकार, वेणु का सुमधुर सगीत या गंगा के मनोहर कल-कल की ध्वनि सुनाई देने लगती है। पूर्व के आभास मे जहां शब्द की ध्वनि और श्रोता के रूप मे होने वाला दुहरा आभास एक रूप हो जाता है। व्यक्ति स्वय मंत्रमय हो जाता है।

यह उदित्त अवस्था पूर्वजन्म के संस्कारो मा की कृपा, व्यक्ति के स्वय के एक निष्ठ प्रयत्नो या गुरु की दया दृष्टि से प्राप्त हो जाती है। भाग्य से यह स्थिति प्राप्त हो जाय तो व्यक्ति को सांसारिक आकर्षणो से होने वाली सहज विरक्ति में रम जाना चाहिए। आकस्मिक रूप मे मिलने वाले इस आनन्द को स्थायी बनाने के लिए समर्पित भाव से जप करना चाहिए, इसी बिन्दु से आगे चलने पर प्रकृष्ट सत्व और परम सत्व की भूमिकायें प्राप्त होंगी तथा सदाशिव व परम शिव का रूप दर्शन होगा। इससे आगे

के अनुभव शब्दों के आवरण में समा नही पाते, केवल महसूस ही किये जा सकते हैं।

सामान्य सावधानियां

तंत्र में जहां कही भी किसी औषधि को स्वयं लाने का विधान है वहां उसे पहले दिन संध्या के समय निमंत्रण देकर आना चाहिए। निमंत्रण देने से पहले भगवान् शंकर का पूजन करके वृक्ष के पास जा कर अपनी भाषा मे प्रार्थना करे—

"हे अमृत पुत्रि! मैं अपने प्रयोजन के लिए कल आपको लेकर जाऊंगा, भगवान् शंकर की आज्ञा से आप मेरे कल्याण एवं मनो कामना पूर्ति के निमित्त अपने सम्पूर्ण बलवीर्य युक्त होकर चलें।"

जिस दिन लाये उस दिन भी भगवान् शंकर का पूजन करके अथवा उस औषधि के (वृक्ष के) पास जाकर शंकर का स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर प्रणाम कर लें फिर उस वृक्ष के पास जाकर जड में प्रणाम करके

"वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षा दस्मात् शिवाज्ञया"

यह पढ़ कर एक ताली बजा दे।

उस औषधि के वृक्ष की जड मे हाथ जोड़ कर—

"नमस्तेऽमृत संभूते बलवीर्य विवर्धिनी,
बल मायुश्य मे देहि पापान्मे त्राहि दूरतः"

यह कहे फिर उसे खोदते समय—

येन त्वां खनते ब्रह्मा येन त्वां खनते भृगुः,
येन हीन्द्रोथ वरुणो येन त्वामप चक्रमे।

तेनाह खनयिष्यामि मंत्र पूतेन वारिणा,
मा पाते मा निपतिते मा ते तेजोन्यया भवेत्
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि मम कार्यकारी भव
मम कार्ये कृते सिद्धे ततः स्वर्गं गमिष्यति

खोदने के बाद जड़ तोड़ने का काम हो तो

ओम् ह्रीं क्षीं फट् स्वाहा

इस मंत्र से जड़ को तोड़ लेना चाहिए।

विभिन्न प्रयोजनों के लिए वृक्षों के पांच अंग-फल, जड़, छाल, फूल, पत्ते लिए जाते हैं। जिन वृक्षों के फूल या फल अभीष्ट ऋतु में नहीं मिल सकते उनकी ये चीजें फलने या फूलने वाले मौसम में दिन के या रात्रि के उस प्रहर में लेना चाहिए जिस समय वह ऋतु रहा करती है। स्मरण रहे दिन रात के चौबीस घण्टों में भी छः ऋतुयें बरत जाती हैं जैसे ब्रह्म मुहूर्त में शान्ति और पुष्टि कर्म करने के उपयुक्त हेमन्त ऋतु, मध्याह्न में ग्रीष्म, तीसरे प्रहर में वर्षा, दोपहर से पहले सूर्योदय से तीन घण्टे तक वसन्त, अर्ध रात्रि में शरद् और रात के पहले संध्या समय शिशिर ऋतु रहा करती है।

प्रत्येक वृक्ष अपने काल में और वर्षा काल में सदा बलवान् रहते हैं अर्थात् इस काल में वृक्षों में पूर्ण प्रभाव रहा करता है।

तांत्रिक प्रयोगों में काम लिए जाने वाले वृक्षों के संबंध में कहा गया है कि एकान्त में और जंगल में उगे वृक्ष अपना पूरा फल देते हैं, दीमक वाली जमीन में उगे, रास्ते में उगे, देवता के मन्दिर, श्मशान और दूसरे पेड़ के नीचे उगे हुए सामान्य आकार से कम या अधिक आकार वाले, जलने से बचे हुए, बिना मौसम के उगे, कीड़ों से खाये वृक्ष निष्फल रहते हैं।

वृक्षों के विभिन्न अंग लेने के लिए शरद् ऋतु में छाल, हेमन्त ऋतु में जड़ अथवा सूर्य जब कन्या से वृश्चिक तक की राशियों में रहे (सामान्यतया यह समय २२ अगस्त से २० दिसम्बर तक रहता है) फूल और पत्ते वसन्त ऋतु में, (१६ फरवरी से १८ अप्रैल तक) तथा फल ग्रीष्म ऋतु में (१६ अप्रैल से २० जून तक) लेने चाहिए। तिथि

विचार—नित्यनाथ के अनुसार—वशीकरण—७ को, आकर्षण ३, १३ को, उच्चाटन २, ६ को, स्तंभन ४,१४, अमावस को, सम्मोहन ८, १९ को और मारण ११, १२ को करना चाहिए। वार विचार—लक्ष्मी साधना शुक्रवार को, वशीकरण शनिवार को, मारण रविवार को, उच्चाटन बुधवार को, विद्वेषण मंगलवार को करना चाहिए।

नक्षत्र विचार—स्तंभन, सम्मोहन और वशीकरण—उत्तरा-षाढ उत्तराभाद्रपद, अश्लेषा, मूल शतभिषा नक्षत्रों में, विद्वेषण व उच्चाटन अश्विनी, भरणी आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, रेवती, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाति, हस्त, चित्रा, उत्तरा फाल्गुनी, पुनर्वसु, पुष्य नक्षत्रों में किया जाय।

दिशा विचार—वशीकरण, सम्मोहन और आकर्षण कर्म में उत्तर या पूर्व दिशा, मारण, विद्वेषण, स्तंभन कर्म में दक्षिण दिशा, मुसल्मानी मन्त्रों एवं लक्ष्मी प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयोगों में पश्चिम दिशा तथा शान्ति पुष्टि के कर्मों में उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिए।

माला—माला में १०८ मनकों की गिनती होती है सुमेरु इनसे अलावा रहता है, एक सौ आठ की न हो तो चौवन या सत्ताईस मनकों की भी हो सकती है किन्तु पूरी माला एक सौ आठ की ही मानी जायेगी। एक बार माला को फिराने के बाद सुमेरु को आखों व ललाट से छुआ कर उलट दिया करते हैं। अन्यथा अगली माला उलटी हो जाती है।

रुद्राक्ष की माला परम पवित्र मानी जाती है, यही एक माला ऐसी है जिसे हमेशा, गले में पहना जा सकता है। इससे सभी कर्म किये जा सकते हैं। वैष्णवी प्रयोगों में तुलसी की माला ग्राह्य रहती है, तांत्रिकों में कमल गट्टे (लक्ष्मी प्रयोगों में) लाभ चन्दन की माला प्रयुक्त होती है। गणपति के प्रयोग में मूंगे की, सरस्वती की उपासना में स्फटिक की, स्तंभन में हल्दी की माला प्रयुक्त होती है। प्रयोगानुसार माला के मनकों और पिरोने के सूत की अलग व्यवस्था होती है।

साधना की विधि

प्रत्येक मंत्र या स्तोत्र को सिद्ध करने के लिए सात आवश्यक बातें होती हैं। संकल्प, विनियोग, न्यास, पूजा, हवन, तर्पण, क्षमा याचना।

संकल्प—संस्कृत मे ही किया जाता है जैसा इस शब्द से प्रकट है किसी भी कार्य को करने के लिए दृढ़ नियम जो लिया जाता है उसे संकल्प कहते हैं। संकल्प में हम व्यक्ति का सारा विवरण और किये जाने वाले कार्य का कीर्तन करते हैं जिसमें व्यक्ति अपने द्वारा कार्य करने के स्थान का भौगोलिक परिचय देते हुए समय का तिथि, वार, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य आदि की स्थिति बताते हुए उल्लेख करता है फिर अपने गोत्र, पिता का नाम, स्वयं का नाम लेकर उस कार्य को वह कहता है जिसके लिए वह अनुष्ठान करता है फिर वह कहता है करिष्ये-करूंगा।

विनियोग—जैसा इस शब्द से प्रतीत होता है उसी के अनुसार आवश्यक बातों का वर्णन करते हुए हम विनियोजन इन्वेंस्टमैंट करते हैं। यह भी संस्कृत भाषा में ही बोला जाता है। संकल्प में हमने कर्ता और स्थान का परिचय दिया था विनियोग में हम मंत्र का पूरा विवरण देते हैं। मंत्र के पूरे विवरण में मंत्र का ऋषि, छन्द, देवता, बीज, और शक्ति का कीर्तन करते है फिर यह कहते हैं कि इस मंत्र या स्तोत्र के इतने जप या पाठ करूंगा।

शाबर मंत्रों मे सकल्प, विनियोग जैसी व्यवस्थायें नही रहा करती। पौराणिक और तांत्रिक मंत्र भी कई ऐसे हैं जिनका विनियोगादि नहीं

होता।

न्यास तीन तरह का होता है। पहला न्यास ऋष्यादि का होता है जिसमे ऋषि का नाम लेकर शिर को, छन्द का नाम लेकर मुख मे, (मंत्र का नाम) मंत्र के देवता का नाम लेकर हृदय में बीज और शक्ति अगर ज्ञात हो तो इनसे गुह्य एवं नाभि या पैरों में, विनियोग से सारे शरीर में हाथ ही अंगुलियों से स्पर्श किया जाता है। न्यास के जरिये हम हमारे चेतना केन्द्रों को प्रस्फुरित आन्दोलित करते हैं। न्यास के करने से साधक मंत्रमय हो जाता है।

पूजा मानसिक और सोपकरण होती है। मानसी पूजा में य, र, ल, व ह इन पाच बीज मंत्रों को बोल कर पच तत्त्वों के प्रतीक पंचोपचार से पूजा की जाती है। पचोपचार मे धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य, गंध आते हैं। इससे अधिक षोडशोपचार और इससे ज्यादा द्वात्रिंशदुपचार से भी पूजन करने का विधान है। जितने ज्यादा उपचार होंगे उतनी ही अधिक सामग्री आवश्यक रहती है।

हवन पूजा के बाद हवन किया जाता है। पूजा मंत्रों के स्वरूप देवता की होती है फिर उस मंत्र का जप किया जाता है। हवन जप की मात्रा का दशांश होता है। प्रयोगों मे हवन करने योग्य समिधा (हवन करने की लकड़ी) हवन योग्य पदार्थों का उल्लेख किया रहता है। हवन उसी मंत्र से होता है जिसका जप किया गया है। मंत्र के अन्त मे पल्लव स्वाहा का ही लगता है किन्तु अनुष्ठान विशेष मे स्वधा, हुम्, फट्, जैसे पल्लव भी लगाये जाते हैं। बड़ी मात्रा के प्रयोगों में प्रतिदिन हवन करने का विधान ठीक रहता है क्योंकि पूर्णाहुति के दिन इतनी आहुति लगना कठिन और अधिक समय लेने वाला हुआ करता है।

तर्पण हवन का भी दशांश होता है अर्थात् प्रत्येक सौ मंत्र पर एकबार तर्पण। तर्पण के बारे मे हम जानते हैं कि यह पितृतीर्थ से किया जाता है। पितृतीर्थ अंगूठे और पहली अंगुलि के बीच का होता है। हाथ में जल लेकर मंत्रोच्चारण के साथ उस जल को अंगूठे और तर्जनी अंगुलि के बीच के (मंगल के) स्थान से पानी धरती पर छोड़ा जाता है। इससे हमारे पितर और मंत्र के देवता तृप्त होते हैं।

क्षमापन—क्षमा याचना है जिसमें हम आराधित देवता से हमारे किये गए कार्य में हुई त्रुटियों के लिए विनम्र भाव से क्षमा मांगते हैं। इसके पश्चात् हम अन्य देवताओं का विसर्जन और इष्टदेव, गणपति, लक्ष्मी सहित नारायण और पूजित देवता को वहां स्थापित रहने के लिए प्रार्थना करते हैं।

इसके अलावा साध्य मंत्र के भी पाच अंग होते हैं जिनका उल्लेख विनियोग मे होता है। ये हैं ऋषि-अर्थात् उस मत्र का सर्व प्रथम दृष्टा कौन रहा था, वही ऋषि कहाता है। छन्द उस मंत्ररूप पद समूह की लय को कहते है। देवता उस शब्दावली कि वा मंत्र का जो स्वरूप बनता है उसी का नाम होता है। बीज से हम उस अक्षर को जानते हैं जिसका विस्तार ही मंत्र के रूप मे हुआ है। शक्ति के नाम मे भी हम बीज का ही उल्लेख करते हैं। प्रत्येक मंत्र का बीज और शक्ति अलग-अलग होते हैं कभी-कभी एक ही बीज शक्ति और बीज दोनों हुआ करता है।

दस अक्षर तक के मंत्र बीज मंत्र, बीस अक्षर के मंत्र और अधिक अक्षर वाले माला मंत्र कहलाते हैं। शास्त्रो की व्यवस्था है कि बाल्यकाल में बीज मंत्रों का जप श्रेयस्कर होता है क्योकि बालक निर्मल हुआ करता है और इस निर्मलता के कारण कन्सट्रेटड मत्र की शक्ति सरलता से प्रकट हो सकती है। युवावस्था मे मंत्र का जप करने का विधान है और वृद्धा-वस्था मालामंत्र जपने की होती है। वृद्धावस्था मे व्यक्ति मोह के तमोगुण से आछन्न रहता है, उसके मन पर कई प्रकार के संकल्प स्मृतियां और आग्रह छाये रहते हैं इसलिए बड़ा (माला) मन्त्र ही उपयुक्त रहता है। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको बालवत् निर्मल रख सके तो वह इस अवस्था मे भी बीज मन्त्र की उपासना कर सकता है। जिन लोगों ने बचपन या लंबे समय से किसी मन्त्र की उपासना चालू कर रखी है उसे वही चालू रखना चाहिए। यह बात उन पर लागू होती हैं जो नये सिरे से करना चाहते हैं या किसी प्रयोजन विशेष से कोई अनुष्ठान करना चाहते हैं।

इनके अलावा अनुष्ठान काल मे अन्य बातों का भी ध्यान रखा जाता है। स्थान, आसन, माला, मुख, तिथि, नक्षत्र, वार हवनीया पदार्थ, माला की अंगुली आदि।

स्थान तांत्रिक अनुष्ठान शवपीठ, श्मशान या अरण्यपीठ श्यामा-पीठ पर किये जाते हैं किंतु ये उग्र प्रयोगों में ध्यान दिए जाते हैं जो साहसी और संकल्पशील व्यक्ति किसी समर्थ गुरु के मार्ग दर्शन मे किया करता है। सामान्य.तथा काम्य प्रयोग उस देवता के मन्दिर में किये जाते हैं जिस देवता का मन्त्र होता है। जो देव मूर्ति उपेक्षित हो, जिसकी सेवा पूजा नहीं हुआ करती उसके सम्मुख बैठकर प्रयोग करने से सिद्धि निश्चय से मिलती है, जो सिद्धपीठ हैं (सिद्धपीठ से तात्पर्य उन स्थानों से है जहां बैठ कर किसी तपस्वी व्यक्ति ने साधना की है या वे स्थान जहा प्रसिद्ध देव मूर्ति रहती है जैसे कामाख्या पीठ या विन्ध्यवासिनी का पीठ या ऐसे ही अन्य) तीर्थ स्थल, नदी का तट, नदी के मध्यभाग में उठा हुआ निर्जल प्रदेश, गुरु चरणों के सान्निध्य मे और ये सब सुलभ न हों तो अपने घर के एकान्त कमरे मे। स्थान का उपासना मे बहुत महत्त्व है। तमोगुणी साधना श्मशान में, रजोगुणी देव मन्दिर या अपने निवास स्थान पर और सत्वगुणी उपासना नदी तीर या तीर्थ स्थल पर करने से शीघ्र फलप्रद रहती है।

आसन—चमड़े का, ऊन का, रेशम का, कुशा का ये प्रतिक्रमशः श्रेष्ठ माने जाते हैं। शान्ति, पुष्टि और लक्ष्मी प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले प्रयोगों में सफेद या पीले रंग का सम्मोहन वशीकरण मे लाल रंग का, मारण मे काले या नीले रंग का आसन प्रयोग मे लिया जाता है। शांति पुष्टि कर्म में गाय या हरिण की चर्म का, वशीकरण सम्मोहन आकर्षण में मृगचर्म, स्तंभन में हाथी का चर्म, विद्वेषण में गीदड़ का चर्म, उच्चाटन मे भेड़ के चर्म और मारण मे गधे के चर्म का आसन काम में लिया जाता है।

समय—तिथि, वार, ऋतु और पक्ष—

लक्ष्मी साधना, शान्ति और पुष्टि कारक प्रयोगों मे हेमन्त ऋतु (करीब 20 अक्टूबर से 20 दिसम्बर) शुक्ल पक्ष, 2, 3, 5, 7 तिथिया और बुध व बृहस्पतिवार से, वशीकरण, सम्मोहन, आकर्षण के प्रयोग वसन्त ऋतु (१९ फरवरी से १९ अप्रैल) में शुक्ल पक्ष की ४, ६, ९, १३ तिथि व सोमवार या बृहस्पतिवार से, स्तंभन शिशिर ऋतु (२० दिसम्बर से १८ फरवरी) में अष्टमी अमावस्या तिथियों, रविवार, मंगलवार,

शनिवार मे, विद्वेषण कर्म ग्रीष्म ऋतु (१६ अप्रैल से २० जून) में शुक्ल पक्ष की ८, ६, १०, ११ तिथियों एवं शुक्रवार या शनिवार से, उच्चाटन वर्षा ऋतु (२१ जून से २० अगस्त) में कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तिथियों व रविवार शनिवार से तथा मारण कर्म शरद् (२१ अगस्त से २० अक्टूबर) ऋतु के कृष्ण पक्ष अष्टमी अमावस्या तिथियों एवं रविवार मंगल वार या शनिवार से प्रारंभ किये जाते हैं।

हवन—हवन मे कुण्ड और वेदिका दोनों ही बनाने की पद्धति प्रचलित हैं—शान्ति, पुष्टि, सम्पत्तिप्रद प्रयोगों में कुण्ड गोल आकार का, वशीकरण आकर्षण सम्मोहन मे अष्टकोण वाला, स्तंभन में चतुष्कोण वाला विद्वेषण मे त्रिकोण वाला, उच्चाटन मे षट्कोण वाला, मारण में अर्ध चन्द्र के आकार वाला, घी की आहुति के लिए जहां तक प्रश्न है, शान्ति पुष्टि कर्म में गाय या भैंस का, वशीकरण, आकर्षण, सम्मोहन में बकरी का, स्तंभन मे भेड़ का, विद्वेषण में अलसी का तेल, उच्चाटन में सरसों का तेल मारण में कड़वा तेल या आजकल मोबिल, या डीजल हवन में समिधा-शान्ति, सम्पत्ति और पुष्टि कारक प्रयोगों मे पलाश, विल्वपत्र, शमी, गूलर या अन्य दूध वाले वृक्ष, वशीकरण मे भी इन्ही वृक्षों की लकड़ी समिधा के लिए काम मे लाई जाती हैं इनके अलावा शेष कामो-स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण-में कुचेला नीम या धतूरे की समिधा प्रयोग की जाती है।

दिशा—अनुष्ठान या मन्त्र जप करते समय प्रयोजन के अनुसार जिस दिशा मे मुख करके बैठना चाहिए, वे इस प्रकार हैं। लक्ष्मी प्राप्ति, अरिष्ट नाश, ग्रहशांति, पुष्टि आदि भी सुख वर्धक कार्यो के निमित्त किये जाने वाले प्रयोगों में उत्तर या पश्चिम दिशा मे, वशीकरण, आकर्षण, सम्मोहन के प्रयोगो में उत्तर दिशा मे, स्तंभन के लिए पूर्व दिशा में (विशिष्ट प्रयोगों मे दक्षिण दिशा में भी) विद्वेषण प्रयोग मे नैऋत्य कोण मे, उच्चाटन प्रयोग में वायव्य या आग्नेय कोण मे, मारण कर्म मे दक्षिण दिशा में मुख करके बैठना है।

माया—पुष्टिकर, दारिद्रय नाशक, सम्पत्ति प्रद प्रयोगो मे लाल चन्दन, मूंगा, शंख की माला प्रयोग मे ली जाती है। सम्मोहन, आकर्षण,

वशीकरण में कमल गट्टे की, स्तंभन में निम्बोली की, विद्वेषण में छिलके सहित निम्बोली की और मारण में घोड़े के बाहर निकले दान्त की माला होती है।

ऊपर दिये गये निर्देश सामान्य अवस्थाओं में हैं जहां किसी प्रयोग मे विशेष चीजों का निर्देश नही किया गया हो वहां इस व्यवस्था को देखकर काम चलाना चाहिए। इन व्यवस्थाओं में—मुख्यतः अर्चा पद्धतियां दो श्रेणियों की हैं—एक शक्ति या तांत्रिक दूसरी वैष्णवी या वैदिक। वैष्णवो में तुलसी की माला, गाय का घी, उपले (कण्डे) शमी-पीपल आदि पवित्र अतएव सर्वत्र ग्रह्य नहीं हैं ऊपर जो व्यवस्था लिखी गई है वह शक्ति सम्प्रदाय अथवा तंत्र मार्ग द्वारा स्वीकृत हैं।

हवन में गाय का घी, आसन में मृगचर्म, माला मे रुद्राक्ष, दिशा मे पूर्व या उत्तर सदा पवित्र माने जाते हैं और यदि उल्लिखित वस्तु न मिले तो ये ले लेनी चाहिए।

वास्तविकता यह है कि अनुष्ठान को इतना स्पष्ट करने के पीछे साधक के लिये उपयुक्त अतएव प्रभावशाली वातावरण बनाने की भावना रही है जिससे कार्य सुविधा एवं विश्वास के साथ सफल हो सके।

वशीकरण-विश्लेषण

व्यक्ति अपने आप में स्वतंत्र सत्ता है किन्तु उसका जन्म किन्हीं एकाधिक के संयोग से होता है इसलिए वह समाज से भिन्न नही हो सकता। स्वतंत्र के रूप मे उसे जो कुछ मिलता है वह वास्तव में ऐसी व्यवस्था होती है जिसमें उसे अपने पर सामाजिक हितों को तरजीह देनी पड़ती है क्योंकि इससे समूहगत व्यवस्था बनी रहती है और व्यक्ति सुरक्षित व सुखी रहता है। पारस्परिक सहयोग और आदान विसर्ग के आधार पर उसे

अपने श्रम का पूरा फल मिलता है अथ च उसके जीवन को परिपूर्ण करने के भौतिक साधन एवं प्रेरणा मिलती रहती है।

भारत की चिन्तन धारा हिमालय और सागर को प्रतीक मानकर चलती है इसलिए यहां की सामाजिक परम्परायें हिमाचल की तरह अटल-अविचल बनी रही हैं, वे व्यक्ति की सुविधा पर ध्यान नहीं देती, व्यक्ति को उसके अनुसार ढलना पड़ता है। यद्यपि आज के समाज ने परम्परागत संहिता को संशोधित करने की कोशिश की है पर यह संशोधन एक प्रकार की उपेक्षा सिद्ध हुआ है।

स्त्री को लेकर हमारे समाज में बहुत-से विधि-निषेध प्रचारित किये गये हैं। विकारो मे काम को प्रथम स्थान देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि सारे विकारो का प्रारंभ काम या कामिनी से होता है, कि काम सबसे बड़ा विकार है। काम विकार से मुक्त होने के लिए अनेक तपस्वियों ने घोर प्रयास किये किन्तु अन्ततः उनको उसी काम की गोद मे गिरना पड़ा।

मनुष्य प्राणि जगत् मे सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है। प्रकृति, ने उसे अपना प्रतिरूप बनाने में कोई कसर नही छोडी। पाशविक आवेशो से मुक्त रखे बिना उसे सूक्ष्म संवेदन शक्ति देते हुए प्रकृति ने बिल्कुल अहिंसक अत एव स्नेहिल बनाया है। आशय यह कि प्रकृति ने किसी को सीग दिये हैं, किसी को दान्त दिये हैं, किसी को पंजे दिये हैं और किसी को पूंछ दी है— ये सब चीजें प्रकृति प्रदत्त शस्त्र हैं जो उन प्राणियों की आत्मरक्षा के लिए काम आते हैं तथा अन्यथा स्थिति मे आक्रमण करने का साधन भी बनते हैं। ये स्थितियां पशु वर्ग के आवेश और आवेश जनित परिस्थितियों से निपटाने के लिए प्राकृतिक गणित के समीकरण हैं। मनुष्य इनसे भिन्न भी है और उच्च भी इसलिए उसे अपनी व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती है। पशु वर्ग सीधे प्रकृति के नियंत्रण में रहता है, इसलिए वहां नर और मादा का स्वतंत्र मूल्य और महत्त्व रहता है। शक्ति शासित जंगल राज में कोई भी नर पशु किसी मादा पशु के साथ बलात्कार नहीं कर सकता, न ऋतुकाल के अलावा समागम कर सकता है इसलिए पशुओं के अलिखित संविधान मे सब कुछ चल रहा है। आज तक वहां कोई आन्दोलन नहीं हुआ, न

किसी भी तरह से समाज संहिता को बदलने की ही आवश्यकता हुई।

मानव समुदाय की बात भिन्न है, वह प्रकृति को समर्पित है भी और नहीं भी। मनुष्य ने अपने आपको प्रकृति सृष्ट मान कर उससे ऊपर उठने की कोशिश की है और उदात्तीकरण के लिए इतने आचार शास्त्र रचे हैं। और विषयों पर नहीं, यहां प्रासंगिक रूप में स्त्री-पुरुषों के सहज और सामाजिक संबंधों की मीमांसा करना चाहेंगे और हम तार्किक एवं यथार्थ दृष्टि से यह खोजने की कोशिश करेंगे कि हमारी सामाजिक मर्यादायें संशोधन चाहती हैं या सम्मान।

पुरुष प्रधान समाज में नारी एक समर्पित अतएव अधिकार प्राप्त वस्तु से अधिक नहीं होती जिस प्रकार हमारे सुख-सुविधा के अनेक उपकरण होते हैं उसी तरह नारी भी है। नारी के साथ हम किस तरह का व्यवहार करें—इस तथ्य का विश्लेषण करते समय यद्यपि मानवीय संवेदना और उदाराशयता से काम लिया गया है, तदापि उसे पुरुषाश्रित रहने का ही उपदेश दिया गया है। पुरुष की सेवाओं में समर्पित की जा रही नारी का सम्मान ठीक वैसा ही था जैसा किसी मोटर को साफ-सुथरा और सही सलामत रखने की व्यवस्था करना। इस स्वार्थ प्रेरित आचार संहिता में संहिताकार प्रकृति के नैसर्गिक संकेत और मर्यादा की भी उपेक्षा कर गये। एक युग था जब आठ वर्ष की कन्या गौरी कही जाती थी और उसी उम्र में उसका विवाह कर दिया जाता था। रजस्वला होने से पहले ही कन्या का विवाह करने की शास्त्रीय आज्ञा थी।

किसी भी कन्या को स्त्री बनने की आज्ञा प्रकृति देती है, और उसे पुष्पित (रजस्वला) करके वह यह प्रमाणित करना चाहती है कि अब वह लड़की संभोगक्षम हो चुकी है, उसमें किया गया निषक व्यर्थ नहीं जाएगा।

आज विवाह की अवस्था (लड़कियों की) इक्कीस वर्ष करने का विचार किया जा रहा है। भले ही यह सामयिक परिस्थितियों का आग्रह हो और इसका परिस्थितिक औचित्य भी हो फिर भी वह प्रकृति की व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। शरीर के आन्तरिक परिवर्तनों का अपना स्वभाव और आकांक्षा रहती है। यौवन का उन्माद व्यक्ति के एकान्त को गम्भीर बना

डालता है और किसी विपरीत लिंगी की तलाश सहज रूप मे मथने लगती है।

इच्छानुसार सहचर के मिलने के बाद हमारा मन रूपी तन्तुवाय प्रेम के ताने-बाने बुनने लगता है। दो व्यक्ति परस्पर अनुरक्त होकर एक-दूसरे को पाने के लिए तड़पने लगते हैं। दोनों की जाति और सामाजिक स्तर, अनुरूप होने के बाद भी माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक हो जाती है अगर स्तर, जाति और धर्म में कहीं भी कोई व्यतिक्रम है तो एक संघर्ष की शुरूआत हो जाती है। दो निरीह व्यक्तियों के आगे सारा समाज और सामाजिक दुर्धर्ष चट्टान की तरह आड़े आ जाते हैं। इस अन्तः संघर्ष की सामाजिक हानि यह होती है कि व्यक्ति की कार्यक्षमता का ह्रास होने लगता है, वह समाज के लिए उपयोगी न रहकर गुप्तरोग हो जाता है।

प्रेम के ऐसे प्रसंगों में प्रकृति की उपेक्षा की जाती है क्योंकि प्रकृति ने दोनों को मिलने मे कोई बाधा नहीं रखी। अवरोध जैसा जो कुछ भी है वह केवल सामाजिक मान्यता का है याने मनुष्य रचित विधान कुण्ठा का प्रसार करता है। दो आतुर तन और उत्कण्ठित मन मिलने के अवसर खोजने लगते हैं। अपराध बोध से ग्रस्त होकर वे अपराध की दुनिया मे जाते हैं। हत्या और लूट जैसे विद्रोही सीधे कानून की आंख में गड़ने लगते हैं और वे असह्य हो जाते हैं, किन्तु पारस्परिक सहमति से और प्रेम के आवेग से ग्रस्त होकर साहचर्य की कामना करने वाले दो व्यक्ति समाज को कोसते रहते हैं तथा प्रच्छन्न पाप करने लगते हैं, गुरिल्ला बन जाते हैं।

लोक विरुद्ध आचरण करने की प्रेरणा देना मेरा मन्तव्य नहीं है तो भी इस प्रकार की व्यवस्था पर कभी-कभी विचार हो आता है।

मेरी इस उक्ति से अनेक वे लोग निराश हो सकते हैं जो मुझे अपने आदर्शों के अनुरूप देखना पसन्द करते हैं। आज तक मैंने यह विचार नहीं रखा कि लोग क्या कहेंगे क्योंकि जो मेरी बिल्कुल निजी राय है वह शास्त्र या समाज सम्मत हो, यह आवश्यक नहीं फिर भी मैं उन कृपालु मित्रों की भावना पर बिना किसी प्रकार का आघात किये ऐसी ही निजी राय दे रहा हूं जिसे तटस्थ बुद्धि से उसके समग्र परिप्रेक्ष्य मे रख कर देखें अगर इसमें कोई सार और आधार दिखाई दे तो सहमत हो लें अन्यथा छोड़ दें।

"विवाहेतर शारीरिक संबंध अनुचित हैं, इस बात से किसी सीमा तक सहमत हुआ जा सकता है, किन्तु दो जनों में प्रेम हो जाने पर किसी भी सामाजिक आधार को लेकर अवरोध खड़ा करना सामाजिक पाप है। तंत्र की बात मैं नहीं कहता क्योंकि तंत्र तो संभोग को यज्ञ मानता है, ऐसा यज्ञ जो व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार कराता है, सम्पूर्णता प्रदान करता है जैसे गीता का कर्मवाद प्रत्येक कर्म को यज्ञभावना से करने की बात कहता है।"

व्यास कहते हैं—"वही पुण्य है जिससे किसी को सुख मिले या दुःख दिया जाय और जिस काम से किसी को शारीरिक या भावनात्मक कष्ट पहुंचे, वह पाप है।" पाप-पुण्य की इस सरल परिभाषा के अनुसार दो प्रेमियों को मिलने देना पुण्य है और उनके बीच में दीवार खड़ी कर देना पाप है।

प्रेम हो जाने की प्राकृतिक विवशता से हमारे ऋषि भी परिचित थे और वे उस परिस्थिति से भी परिचित थे जिसमें एक पक्ष प्रेम करता है और दूसरा उदासीन। आकर्षण, सम्मोहन और वशीकरण के प्रयोग ऐसी परिस्थितियों के प्रमाण हैं। किसी भी व्यक्ति के लम्पट हो जाने की बात से कोई भी सहमत नहीं होगा क्योंकि वह उच्छृंखलता होती है, मुक्त यौनाचार के भी ऐसे ही खतरे हैं, इसलिए मोहन वशीकरण के प्रयोग इस तरह की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के लिए नहीं बताये गए हैं। शिश्नोदर परायणता पशुता है और पशुता से मानव सहमत नहीं हो सकता। हां, जो बात तर्क और यथार्थ की प्रकृति पर कसी जा सकती है और उसमें किसी भी प्रकार की उपयोगिता एवं वास्तविकता प्रकट होती है तो उसे बिल्कुल नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। सिद्धान्ततः मैं किसी भी नारी पर सम्मोहन या वशीकरण जैसे प्रयोग करने का पक्षपाती नहीं हूं, क्योंकि इससे एक पक्ष को बलात् अपनी इच्छा के अनुसार चलने के लिए बाध्य किया जाता है इस बल के प्रयोग से तन को नहीं मन को बाध्य किया जाता है इसलिए वह क्रूर नहीं लगता तो भी वह स्वाभाविक रूप से होने वाला प्रेम न रह कर आरोपित प्रेम ही रहता है।

उचित तो यह रहे कि व्यक्ति किसी के प्रति आसक्त हो ही नहीं,

इच्छाओं को नियंत्रित रखे यदि कहीं मन रम जाय तो अपनी शालीनता एवं इच्छा शक्ति से दूसरे के मन में स्नेह का अंकुर पल्लवित हो जाने दें। इस प्रकार की परिस्थिति में प्रत्येक वस्तु सहज-स्वाभाविक रहती है। उसके साथ ही यह भी सच है कि मन पर किसी का वश नहीं,, वह एक बार जिस काम के लिए अमादा हो जाता है उसे पूरे किए बिना चैन नहीं मिल सकता। यहां कुछ ऐसे मार्मिक प्रसंगों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है जो सम्मोहन जैसे प्रयोगों का औचित्य और आवश्यकता सिद्ध करते हैं।

इन प्रसंगों को लिखने का यही प्रयोजन है कि यदि दुर्भाग्यवश ऐसी मनःस्थिति में फंस जाय तो इनसे शिक्षा ले लें और इन प्रणय प्रसंगों को जीवन-मरण का प्रसंग न बनावें। नारी या काम, जैसे कि पाश्चात्य दार्शनिक कहते हैं, जीवन की धुरी है, हमारे जीवन का चरम नहीं हैं। हमारे क्लांत श्रान्त जीवन के सुखद विश्राम स्थल हैं जहां विश्राम करने से हमें आगे बढ़ने का साहस, स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है। इन प्रसंगो में घटना के सिवा सभी कुछ कल्पित है।

एक हैं राजा बाबू। अपने परिवार के एकमेव वंशधर। पिता तीन भाई हैं, दो निस्सतान रह गये केवल राजाबाबू अपने परिवार और प्रजा तन्तु को चलाने वाले। शहर में अध्ययन के लिए आते हैं और एक तरुणी के मोहपाश मे बंध जाते हैं। परिवार वाले नहीं चाहते कि विजातीय वधु उनके घर में आये पर कोर्ट मैरिज हो जाती है। लड़की के घर वाले भी इससे प्रसन्न नहीं हैं। तीन-चार वर्ष तक विवाहित जीवन चलता है, इस बीच लड़की की मां का आग्रह रहता है कि राजा बाबू अपने गांव की मिल्कियत लड़की के नाम कर दें किन्तु न वे ऐसा कर सकते हैं न वे इसके अधिकारी ही हैं। चौथे वर्ष में अलगाव शुरू होता है और पांचवें वर्ष तलाक का प्रकरण कोर्ट में पेश कर दिया जाता है।

राजा बाबू अपनी पत्नी को पाने के लिए दर-दर की खाक छानते हैं, बहुत कुछ खो देते हैं, अपना स्वास्थ्य, धन और चैन लुटाकर भी वे अपने मन को समझा नहीं पाते। वे यह बात मानते हैं कि उनकी पत्नी निष्ठावान् हैं, उसके माता-पिता ही उससे यह करा रहे हैं। इसके समानान्तर उनका आहत अहंकार अपनी पत्नी को पद दलित किये बिना मान नहीं सकता।

उनकी पत्नी होकर विद्रोह कर रही है—यह तथ्य उनके गले उतर ही नही रहा। जबकि वास्तविकता यह है कि उनकी पत्नी का एकांत भरने के लिए दूसरे पुरुष प्रवेश कर चुके हैं। उनकी विश्वास भावना को देखते हुए ऐसा लगता है कि वे अपनी आंखों से भी अपनी पत्नी को किसी पराये के साथ सोया देख लें तो उस दृश्य को ही कल्पित माया जाल कह डालेंगे।

दूसरे हैं प्रणय कुमार। स्वभाव से मुक्त और व्यवहार से स्नेही। प्रयत्न और भाग्य के सहारे के सुखी जीवन प्राप्त कर लेते हैं। स्त्री या रोमांस जैसी बात उनके विचार में कभी आती ही नही। पर भाग्य की विडम्बना ही कहा जाय कि एक परिवार में उनका आना जाना शुरू हो जाता है और वे उस परिवार के अभिन्न अंग बन जाते हैं उसी परिवार की एक षोडशी से उनके स्नेह बंधन अंग बंध जाते हैं परिवार को जाने उनके प्रच्छन्न सम्बन्धों का पता है या नहो है पर परिवार वाले कभी बाधक नहीं बनते।

अचानक एक दुर्घटना होती है। लड़की अपनी रिश्तेदारी मे पास के शहर में जाती है और वहां से विकर्षण की शुरुआत हो जाती है। अलगाव बढ़ता-बढ़ता घृणा तक आ लेता है। प्रणय कुमार अपनी जगह स्थिर हैं। दिन की चटक धूप की जगह ठिठुरन भरी रात का अन्धेरा घिर आता है। जिस परिवार में उनका इतना मान-सम्मान था। जो उस परिवार के अभिन्न अंग बन चुके थे, वही परिवार उनको पराई दृष्टि से देखने लगा है। वही कुमारी अब उनसे दूर भागने लगी है जो एक पल के लिए भी बिछुड़ना नहीं चाहती थी।

वे भी प्रण ले लेते हैं कि पूर्व स्थिति लौटा कर लायें तो ही उनके जीवन की सार्थकता है अन्यथा इस पराजय से तो मौत ही भली। सारे हालात बदल चुके हैं, लड़की का विवाह हो चुका है, पर प्रणय कुमार के मन को कौन समझाये—स्वाभाविक है परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए और गुजरे जमाने को लौटाने के लिए वे भी जहां कही आशा देखते हैं वहीं चल देते हैं, जो कुछ भी करने को कहा जाय कर देते हैं किन्तु आज तक निराशा के अलावा कुछ मिला नही। उनकी चुनौती है कि वे घोर-से-घोर प्रयास कर सकते हैं, बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठा सकते हैं पर उनका

मनोरथ पूर्ण होना चाहिए।

तीसरे हैं जिसन बाबू। सम्पन्न परिवार है, खर्च करने के सिवा कोई काम नहीं। दुःख और अभाव क्या होता है—वे नहीं जानते। उनके एक मित्र हैं, जिनकी स्थिति कमजोर है। मित्र वकील हैं और पेशे में अभी जम नहीं सके हैं। वक्तन-फवक्तन उनसे उधार ले लिया करते हैं। वकील साहब की पत्नी एक औसत स्त्री है, मनोहर नाम की कोई चीज उसके पास नहीं है, जिसन बाबू की सम्पन्नता कहे या उनका स्वभाव या कोई और कारण—कुछ भी हो सकता है, वकील साहब की पत्नी जिसन बाबू के आगे समर्पण कर देती है, अनेक बार अनेक तरह से वह जिसन बाबू को निमन्त्रण देती है किन्तु जिसन बाबू हैं कि उपेक्षा कर देते हैं।

परिस्थितियों का व्यंग्य देखिये कि वकील साहब और जिसन बाबू की पत्नी के शारीरिक संबंध हो जाते हैं और बहुत जल्द वकील साहब विमुख भी हो जाते हैं। जब जिसन बाबू को इन सम्बन्धों की भनक मिलती है तो वे अशान्त हो उठते हैं और इसे अपना अपमान मानकर वकील पत्नी को भोगकर इस अपमान का बदला चुकाना चाहते हैं किन्तु तब तक परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से बदल जाती हैं। वकील साहब की प्रैक्टिस अच्छी चलने लगती है और उनकी पत्नी जो कभी जिसन बाबू के सहचर्य के लिए लालायित रहती थी वह भी उपेक्षा दरसाने लगती है।

जिसन बाबू की कुण्ठा उनको पागलपन की हद तक ले जाती है। जब कभी वे इस अपमान का ख्याल करते हैं तो उन पर दौरा पड़ जाता है। घर के बर्तनों को फोड़ देते हैं, कपड़े फाड़ देते हैं, सभी घर वालों के साथ क्रूर बन जाते हैं। एक हंगामा खड़ा कर देते हैं।

जिसन बाबू की पत्नी बेहद परेशान हैं और जिसन बाबू अपने अपमान को सहन नहीं कर सकते फलस्वरूप सुखी घर में अशान्ति की आग लग जाती है। वकील साहब की समृद्धि जिसन बाबू और उनकी पत्नी के लिए और अधिक सन्तापकार बन जाती है, प्रेम प्रतिहिंसा में बदल जाता है, स्नेह द्वेष का रूप धारण कर लेता है।

इस मनस्ताप से मुक्ति पाने के लिए वे ओझा, तांत्रिक और ज्योतिषियों की शरण में हैं किन्तु सबके अपने-अपने निदान, अपने-अपने उपाय

और समस्या वही की वहीं, वैसी की वैसी।

और ऐसी ही अनेक दुःखान्तिकायें। जैसा कि हम पहले पढ़ आये हैं और स्वयं भी समझते हैं कि इस प्रकार की परेशानियों को निमन्त्रण न दें और अपने विवेक एवं मानसिक सन्तुलन को न खोयें क्योंकि हमारा जीवन किसी गुरुतर कार्य के लिये सौंपी गई धरोहर है। माना इस तरह की दुर्घटनाओं और सन्तापों के पीछे किसी पूर्व जन्म के बाकी रहे कर्मों और सम्बन्धो की कड़ी एवं उनका भोग भी एक प्रबल कारण हो सकता है किन्तु ऐसा ही सर्वांशतः हो—यह जरूरी नहीं। हमारी वैचारिक परिपक्वता और विवेक हमें इस प्रकार की विषम स्थितियों से बचा सकते हैं और हम एक भयानक त्रासदी से अक्षुण्य रह सकते हैं पर जो लोग इन प्रसंगो में से गुजर रहे हैं उनके लिए यह परामर्श निरर्थक है, वे कहते हैं—"ये सब बातें हम समझते हैं किन्तु अब वापस लौट सकना हमारे बस की बात नहीं है।"

अनियन्त्रित मन बहुत दुर्धर्ष होता है। उसमें निहित प्रचण्ड शक्ति अविश्वसनीय चमत्कार दिखा सकती है पर उसे किसी उदात्त स्थिति का साक्षात्कार कराये बिना यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि यह सांसारिक उद्वेगों को तटस्थ बुद्धि से देखे और भोगे। इन या ऐसे प्रसंगों में मन की अवधारणा ही एकमेव कारण है। यदि मन को थोड़ा मोड़ सकें तो धीरे-धीरे इस कट्ना से मुक्त हो सकते हैं।

इन परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके हम अपनी तरफ से निदान और निष्कर्ष निकाल सकते हैं उनका मन्त्र या तन्त्र शास्त्र से कोई सरोकार नहीं। तांत्रिक उपचार और मांत्रिक प्रयोग मन पर ही असर करते हैं इसलिये वे मन की सहजता, आग्रह, प्रवृत्ति आदि पर विचार नहीं करते, वे अपनी शक्ति के प्रति आश्वस्त हैं और उन मन्त्रों की भी यह चुनौती है कि उनमे छुपी शक्ति को कोई प्रकट कर लें फिर साध्य कोई भी हो और कैसा भी हो।

उपरिवर्णित प्रसंगो की समाजशास्त्रीय मर्यादा कुछ भी हो—उसके उचित-अनुचित पर विचार न करके हम केवल मन्त्र और उसके प्रभाव पर विचार करना चाहेंगे। इन परिस्थितियों के समाधान के लिए दूसरे लोगों

ने क्या किया और कैसे व कितना किया—यह तो वे जानें पर जब ये समस्यायें मेरे सामने रखी गई और मन से इस तरह के झमेलो से दूर रहना चाह कर भी जब उन लोगों की नारकीय यातना को देखा तो शास्त्र का वचन याद आ गया कि सामान्य परिस्थिति में सम्मोहन या वशीकरण जैसे प्रयोग नही करना चाहिए, किन्तु जब प्राणों पर आ बने और प्रेम का रोग असाध्य हो जाय तो प्राण रक्षा के लिए इन प्रयोगों को कर लेना चाहिए।

शास्त्रों में साबर और तांत्रिक अनेक प्रयोग वशीकरण के दिये गये हैं किन्तु जब वे प्रयोग एक-एक करके विफल होने लगते हैं तो समस्या उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि प्रयोगों पर अविश्वास नहीं होता क्योंकि वे प्रयोग अन्यत्र सफल सिद्ध हो चुके हैं, फिर ऐसी परिस्थिति में वे निष्फल क्यों हो जाते हैं ? मांत्रिक के लिए इस तरह के जटिल प्रसंग ही विचारणीय बनते हैं।

परिस्थितियों का समूचा परिप्रेक्ष्य देखने पर ऐसा लगता है कि जिस महिला को लेकर ये विषमतायें उत्पन्न होती हैं, उसका स्वतंत्र अस्तित्व नही रहता। प्रेम के तिरस्कृत हो जाने पर मन में विरोध भाव जमता चला जाता है ऐसी परिस्थिति में उग्र प्रयोग ही कारगर सिद्ध होता है पर उसकी भी दुगुनी या चौगुनी मात्रा में जप करने पड़ते हैं क्योंकि सामान्य संख्या में किये जप तो उस व्यक्ति के आवेश को शान्त करने में ही चले जाते हैं इसके बाद जो जप किये जाते हैं वे उसके मन मे स्नेह का अनुकरण करने में समर्थ होते हैं।

दूसरी बात यह भी है कि कोई भी मन्त्र सिद्ध करने पर ही कार्यकारी बनता है और सिद्ध करने के लिए जो मात्रा शास्त्रों ने बताई है वह युग के प्रभाव से अवमूल्यन का शिकार हो चुकी है। आज जब प्रत्येक वस्तु ह्रासमान मूल्य को गिरफ्त में आ चुकी है तो तो मन्त्र के जप में भी यह बात लागू हो जाती है। एक जमाना था जब समाज में लखपति की प्रतिष्ठा थी आज लाख की संख्या वही है पर जिसकी संख्या की जाती थी उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी है। मन्त्र साधना में यह सिद्धान्त विपरीत अवस्था मे लागू होता है अर्थात् मन्त्र में अपनी शक्ति उतनी ही है जितनी पहले थी

लेकिन साधक का मन इतने मलों से लिप गया है कि यह मात्रा उसकी शक्ति के प्रकट होने के लिये पर्याप्त नहीं रह गई है। अस्तु।

इस सम्बन्ध में हम अन्यत्र प्रसंगानुसार विचार करेंगे। किसी से प्रथम बार सम्बन्ध जोड़ने के लिए आकर्षण-वशीकरण के प्रयोग अपेक्षया जल्दी असर कर जाते हैं पर जहाँ एक बार जुड़कर फिर बिगड़ जाते है तथा उस बिगाड़ में परिवार जन भी सहकारी बन जाते हैं वहाँ दुहरा असर करने वाले प्रयोग आवश्यक हो जाते हैं। मेरा अपना विचार है कि परिवार की विरोध भावना को शान्त करने के लिये शत्रुजय का प्रयोग और अभीष्ट व्यक्ति की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए वशीकरण इस प्रकार की विकट परिस्थिति में पीताम्बरा का प्रयोग 'योषित्समाकर्षणम्' वाले श्लोक का संपुट लगा कर करना चाहिये। यह प्रयोग केवल पीताम्बरा के स्तोत से ही किया जाना चाहिये—मन्त्र जप से नहीं।

दक्षिणाकालिका का प्रयोग भी इस परिस्थिति में सार्थक हो सकता है किन्तु वह भी केवल स्तोत्र पाठ वाला ही, मन्त्र से नहीं। यों होने को कालिका विखण्डन और विकर्षण की प्रतीक है तदपि उसमें रजोगुण का बिन्दु विद्यमान रहता है। "ईशानः सेन्दुवाम श्रवण परिगतो" इस पूरे श्लोक का प्रतिश्लोक सम्पुट लगाकर पाठ करने से कार्य सिद्धि हो सकती है। इन प्रयोगों की विधि यथावसर लिखी जायगी।

जहाँ परिवार के स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ आसक्ति के कारण प्रेम सम्बन्धों में दरार पड़ती है वहाँ उन दो व्यक्तियों में विद्वेषण का प्रयोग करने के बाद अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए दूसरा प्रयोग करना समीचीन रहता है।

शारीरिक आकांक्षाओं के परिणाम स्वरूप जो लालसा जगती है उसे प्रेम कहा जाता है जब कि यह शुद्ध रूप से प्रयोजन परक सम्बन्ध है। जिस तरह चेतन सत्ता के निवास और विलास के लिये हमारा यह शरीर रचा गया है उसी तरह प्रेम की सुकुमार अनुभूति से तृप्त होने के लिये मन की संवेदनशीलता का विकास किया गया है। प्रेम किसी भी सौन्दर्य को अपने आप मे अनुभव करने का नाम होता है अगर प्रेम की मानसिकता को हम देह पर अधारित कर देते हैं तो प्रेम अपनी वास्तविक गरिमा खोकर

वासनाओं का हा-हा कार बन जाता है। प्रेम तन्मय होकर जीने का नाम है उसमें किसी प्रकार की द्वित्व नहीं होता इसलिये किसी प्रकार की स्वतन्त्र आकांक्षा भी नहीं बचती।

सर्दी की सुहावनी धूप अथवा गर्मी की रात में बिखरी-बिखरी शीतल चान्दनी के एहसास को हम जिस तरह जीया करते हैं, उसमें भी अधिक संवेदन शील रहकर प्रेम की आत्म विस्मरण कारी भावना को भोगा जाता है। शरीर की उसमें केवल प्रतीकगत महत्ता रहती है। जहां देह साध्य हो जाता है वहां प्रेम निःशेष हो जाता है। मेरा अनुभव है ऐसा प्रेम न कभी चरता है, न किसी दीवार से कटता है। न कभी पराजित होता है। प्रेम एक समप्रबोध है उसमें बहन बेटी, माँ जैसे दायरे नहीं बंटते। एक प्रेमी इन सारी अनुभूतियों को एकाप्रभाव से भोगता है।

किसी व्यक्ति को मिला हुआ दैहिक सौन्दर्य उनके पूर्वजन्म के पुन्यो का एक अंश है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी-किसी की रूप राशि इतनी मोहक होती है कि देखने वाला मुग्ध हो जाता है। स्वाभाविक है ऐसे रूप के प्रति इक तरफा आसक्ति से पीड़ित हो कर उसे पाने के लिये आतुर लोग मन्त्र या तन्त्र की शरण में जाँय पर वे यह न भूलें कि मन्त्र के प्रभाव से मोहित होने के बाद भी समाज की अजेय मर्यादायें उसे प्रकट नही होने देती जैसे सूर्य की प्रचण्ड किरणों को बादलों की घटायें। इसलिये ऐसे अवसर अवश्य होने चाहिए। जिनसे वह मन्त्रबल से उत्पन्न हुआ प्रेम सार्थक हो सके।

विविध प्रयोग

कूप मण्डूक एक अपशब्द है जो व्यक्ति की मूर्खता को प्रकट करता है। कोई भी व्यक्ति कूप मण्डूक हो सकता है, किन्तु न वह अपने को समझता है, न कहलाना चाहता है तो भी एक परिस्थिति ऐसी आती है

जब आदमी मूर्ख होना चाहता है। हमारे आस-पास ऐसे लोग मिल जायेंगे जो अपनी याददाश्त कम हो जाने की शिकायत करते मिल जायेंगे। हमारा जीवन दर्शन समाज की एक नियत धारा में बंध गया है और उससे हम एक ही आयाम से देखने के आदी हो गये हैं जब कि शक्ति की धारा दो विपरीत और विरोधी गुण धर्मों में बहती है जिसे हम ऋणात्मक और धनात्मक, निगेटिव और पाजिटिव कहते हैं। ये दो तरह के रूप आवश्यक हैं इससे शक्ति की कार्य क्षमता सम्पूर्ण होती है, इसके बिना काम नहीं चल सकता। मूर्खता और विस्मृति एक ही धारा के दो पहलू हैं, दोनों ही हमारे लिये वरदान हैं। जिस तरह गणपति की दो शक्तियाँ हैं उसी तरह ये भी शक्ति के दो रूप हैं।

मूर्ख का संसार केवल पशुता तक सीमित रहता है, प्रकृति के आवेशों, उद्वेगों और आवश्यकता को वह पूरी उत्तेजना के साथ भोगता है, प्रत्यक्ष से आगे उसका कोई संसार नहीं होता। अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ने तथा ज्ञान से ज्ञान शून्यता की अवस्था प्राप्त करने के लिये व्यक्ति-किस तरह की आकुलता को भोगता है यह अनुभव करने की बात है। इस विकलता से मानव देह का प्रयोजन सिद्ध होता है किन्तु कभी-कभी व्यक्ति इससे उद्विग्न होकर मूर्खता का वरण करना भी सोचने लगता है।

आज के सभ्य समाज में मूर्खता का विस्तार हो रहा है, लोगों की दृष्टि और आकांक्षा बहुत सीमित हो गई है पर यह मूर्खता सीमित ही रहने की नहीं—समेटने की है। ठीक वैसी ही जैसे एक पशु पूरे चरागाह को अकेला ही खा लेने की सोचता है! किसी दूसरे पशु की उपस्थिति उसे नहीं सुहा सकती भले ही वह उस चरागाह को कई दिनों तक नहीं खा सके।

शास्त्र ज्ञान का मार्ग बताते हैं, वे व्यक्ति को जीवन का श्रेय प्राप्त करने के लिए उपदेश देते हैं और इस श्रेय को प्राप्त करने के लिए उसके आचार और विचार पर नियंत्रण करने की व्यवस्था करता है यह शास्त्रों को जीवन में उतारने की शर्त है।

विश्व निरपेक्ष भाव से गतिशील है। प्रकृति अपनी व्यवस्था के अनुसार काम करती आ रही है। इसे समझने की कोशिश करने वाले लोग

ज्ञानी कहे जाते हैं और इससे दूर रह कर केवल अपने पेट और पीठ तक सिमटने वाले मूर्ख रह जाते हैं गीता की यह उक्ति जो होना है सो होगा और नहीं होने वाला नही होगा (यदभावि न तद् भावि, भावी चेत् न तदन्यथा) एक दृष्टि से घोर भाग्यवादी है और दूसरी ओर से भविष्यत् की ओर से मुंह मोड़ने की दिशा देने वाली है। मैं यह आग्रह नही करता कि आगे जिन परिस्थितियों का विवरण दिया जायगा उनको जीवन का और चिन्तन का परम माना जाय। किसी भी सिद्धान्त को सर्वांशतः मानने पर सफलता अवश्य मिल जाती है, क्योंकि व्यक्ति स्वयं तद्रूप हो जाता है किन्तु आज के जमाने में व्यक्ति को अनेक स्तरों पर जीना पड़ता है और वह किसी भी सम्प्रदाय के आचार को अविकाल रूप से पालन नही कर सकता। इसके साथ ही एक विवशता यह भी रहती है कि हमारे समाज में अनेक परम्परायें और विचार धारायें केवल रूढि के कारण चलती रहती हैं। किसी भी रहस्यवादी विचार धारा को कट्टरता से पालन करने पर हम भ्रान्तियों में उलझ जाते हैं। जो लोग प्रेत या टोटके पर विश्वास करते हैं उनके घर मे साधारण-सी और सहज बीमारी या अन्य किसी बाधा के आ जाने से वे परेशान हो जाते हैं और इन प्राकृतिक बातों को भी वे प्रेत-कृत मान बैठते हैं। यह स्थिति गलत है और अहितकर भी। साधारण सी बातों को भी इतना तूल देना कमजोरी है, जो निश्चय से देह की व्याधि है। उसके लिए व्यर्थ में किसी अन्य कारण को तलाशना पागलपन है।

मन में किसी भी तरह का वहम रखने से रस्सी का सांप और लकड़े का भूत बन जाता है। वे आदमी भी इसी दुनियां में हैं, जो भूत जैसी स्थिति को सामने देखकर भी विचलित नही होते, ऐसे वीर और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति प्रशंसा के पात्र होते हैं। हालांकि इस बात की पूरी संभावना रहती है कि प्रेत या दूसरों के द्वारा की कई क्रियाओं से व्यक्ति कई प्रकार की परेशानियों और बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है। इन पर-कृत व्याधियों से मुक्ति पाने के लिए मांत्रिक और तांत्रिक उपचार बहुत अनुकूल रहते हैं किंतु किसी भी मांत्रिक का सहयोग पाने से पहले अपने आपको संतुष्ट कर लेना चाहिए कि इस व्याधि या घर की परेशानी के पीछे कोई अलक्षित कारण है, स्वाभाविक कार्यों के लिए मांत्रिक के पीछे

पड़ना या स्वयं द्वारा कुछ किया जाना अनुचित है। निःस्वार्थ और चतुर मांत्रिक लक्षणों से ही यह जान लेगा कि व्याधि प्राकृत है या अप्राकृत ?

हम अपनी आंखों से देखते हैं कि एक दुकान बहुत सफलता पूर्वक चलती थी, किंतु दूकान वही, बैठने वाला वही फिर भी उसकी ऋद्धि सिद्धि समाप्त हो गई, जो व्यक्ति आकर्षण करता था, अब उसमें शक्ति की निगेटिव धारा विसर्जित होने लगी है। सभी चीजों के यथावत् रहने के बावजूद यह परिवर्तन कैसे आया ? ज्योतिष की दृष्टि से हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि बैठने वाले व्यक्ति का समय अनुकूल चल रहा है या प्रतिकूल और जिन वस्तुओं का वह व्यवसाय कर रहा है उन पर गोचर ग्रहों का क्या प्रभाव पड़ रहा है अगर इस दोनों स्थितियों में कोई दोष नजर नहीं आता तो निश्चय से उस ऋद्धि का नाशक कोई अस्वाभाविक कारण है।

इसी तरह कोई बहुत संपन्न परिवार है, उसमें रहने वाले सदस्य प्रेम से रहते आये हैं किंतु कुछ समय बाद उनमें कलह और घृणा का विस्तार होने लगता है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों की संकीर्णता या परिवार के किसी व्यक्ति की स्वार्थ लिप्सा अगर है तो इसके पीछे स्वाभाविक और प्रकट कारण है किन्तु परिवार के सभी सदस्य आपस मे स्नेह पूर्वक रहना चाहकर भी नहीं रह पाते एक दूसरे को देखकर अकारण द्वेष और घृणा के वशीभूत हो जाते हैं तो निश्चय से इसके पीछे कोई अलक्षित कारण है।

किसी व्यक्ति के आय के अच्छे साधन हैं किन्तु एक समय से उसके यहां आय के साधन क्षीण होने लगते हैं और व्यय के प्रसंग अनावश्यक एवं अकल्पित रूप से आ खड़े होते हैं। आखिर ऐसा क्यों—इन आगत परिस्थितियों का सम्यक विश्लेषण करना ही चाहिए। माना इस युग में स्वार्थ, अहंकार, दंभ, घृणा, द्वेष आदि भावों की बढोतरी हो रही है और व्यक्ति को अपने जीवन में पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप उत्थान-पतन, सुख-दुःख आदि का परिवर्तन देखने को मिलता है किंतु हर जगह, हर व्यक्ति के जीवन में ये परिवर्तन केवल भाग्य के ही कारण नही मिलते कई बार दूसरे व्यक्ति के द्वारा किये गए कार्यों के परिणाम स्वरूप भी दुःख भोगना पड़ता है। जिस किसी भी घर मे प्रेत का प्रवेश हो जाता है, उसमें उसके

प्रवेश या उपस्थिति मात्र से अपवित्रता, घृणा और द्वेष भावना की वृद्धि होने लगती है। वह श्मशान का वासी है और घर में भी श्मशान जैसा शून्य एवं विखण्डन कारी परिस्थितियां उत्पन्न कर देता है।

तंत्र शास्त्र में इस प्रकार की परिस्थितियों के निराकरण के लिए कई प्रयोग दिये हैं। किसी भी व्यक्ति को कष्ट देने के लिए कोई प्रयोग करना पाप है किन्तु आत्म रक्षा के लिए निषेधात्मक प्रयोग करना पड़े तो भी कोई आपत्ति नहीं। आक्रान्ता को दण्डित करना विधि संगत माना जाता है।

सम्मोहन के प्रयोग या विद्वेषण के प्रयोग साधारण अवस्था में निषिद्ध माने जाते हैं किंतु जहां किसी व्यक्ति को मोहित करने से हमारे बीच चला आ रहा द्वेष समाप्त हो सकता है या किसी अधिकारी के पास हमारा काम अटका हुआ है उस पर सम्मोहन का प्रयोग करना अथवा अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए सभा को मुग्ध करने वाला प्रयोग अनुपयुक्त नहीं रहेगा।

इसी दृष्टि से यहां कुछ प्रयोग दिए जा रहे हैं। इनमें मुसलमानी पद्धति के भी हैं और साबर तो हैं ही।

हाजरात का मतलब होता है प्रत्यक्ष। अंगूठे पर, कागज पर या किसी डिबिया में रखे काजल या काली स्याही पर देखने से जो चीज प्रत्यक्ष हो जाती है और सारे घटना क्रम को आंख के सामने घटते हुए देखता है। ऐसे प्रयोग चुटकुले माने जाते हैं। हाजरात करने से पहले निम्नलिखित प्रयोग कर लिया जाय तो उसके सिद्ध होने में सरलता और निश्चितता रहती है।

"ओम् ह्रीं श्रीं क्लीं हाजरात सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा"

इस मन्त्र को शनि या मंगल के दिन एक हजार आठ बार चमेली के तेल और कपूर पर पढ़ ले फिर इसी मन्त्र को पढ़ता हुआ काजल उतार ले। और इसी दिन हाजरात करने के लिए इसका उपयोग कर ले। यही काजल सभी के लिए काम आ सकता है, अवस्था भेद का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मूलत: इस मन्त्र का प्रयोग हाजरात के लिए किसी दूसरे प्रयोग को

करने से पहले इसका जप करना चाहिए किन्तु इससे भी काजल सिद्ध कर लिया जा सकता है।

शक्ति साधना के प्रयोग

यहां शक्ति का अर्थ उन प्राणियों से है जो दूसरे लोक या योनि के वासी हैं। इन प्राणियों के अलग-अलग नाम हैं और नाम के अनुसार इनकी शक्ति है। प्रसंगवश यहा कार्य सिद्धि के लिए गणपति, वेताल, अमीर, हमजाद (छाया पुरुष) और मोकल की साधना के लिए विधि सहित प्रयोग दिये जा रहे हैं। ये शक्तियां लोक हित के लिए काम मे ली जायें तो व्यक्ति का यश बढता है और पीड़ित तथा दुखी व्यक्तियों को लाभ मिलता है। इनका दुरुपयोग करने से ये शक्तियां क्रमिक रूप से क्षीण होती हुई लुप्त हो जाती हैं। मोकल तामसी साधना है इससे कोई अधिक सत्कर्म करने की आशा नही रखी जा सकती।

इन प्रयोगों को करने के लिए साहस श्रद्धा और विनय की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। कमजोर आत्मशक्ति वाला व्यक्ति इस प्रयोग को न करे। साधना के समय ये लोक कई तरह के कई रूप दिखलाया करते हैं, उनसे अप्रभावित होकर अविचल भाव से करने पर ये प्रकट हो जाते हैं।

इनको करने से पहले आत्म रक्षा के लिए कोई प्रयोग करना आवश्यक होता है इससे बहुत लाभ रहता है। दुर्भाग्य से व्यक्ति भयभीत हो जाय, काम बीच में छूट जाय, तो यह प्रयोग उसकी रक्षा करता है साधक के मन में यह विश्वास बना रहता है कि ये सारे उपद्रव उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते और उस कार (लक्ष्मण रेखा) के भीतर इनका कोई वश नहीं चलता।

आत्म रक्षा कर प्रयोग

"परमात्मन् परब्रह्म मम शरीरं पाहि पाहि कुरू कुरू स्वाहा"

भगवान् नृसिंह का ध्यान करके इस मन्त्र की एक माला प्रारंभ में जपने से देह रक्षा होती है।

देह रक्षा का दूसरा मन्त्र

"छोटी मोटी थमन्त वार को वार बांधे पार को पार बांधे धरा धमासाण बांधे जादू वीर बांधे ठेटूना टवर बांधे दीठ मूठ बांधे चोरी छीना बांधे.मिड़िया और बाघ बांधे लखुरी स्यार बांधे बिच्छू और सांप बांधे ला इलाह के कोट इल्लिलाह की खाई मुहम्मद रसूलिल्लाह की चोरी हजरत अली की दुहाई"

इस मन्त्र को सात बार बोलकर अपने जमीन पर रखे घुटने के हाथ मारे। दाहिने हाथ से बायें या दाहिने घुटने पर हल्के हाथ से मारे फिर अपने चारों ओर की अंगुली से रेखा खेंचकर चक्कर सा बना दें।

देह रक्षा का तीसरा मन्त्र

यहि सार सार सार जिन्न देव परी जबर कुफार एक खाइ दूसरी कुफार अग्नि पसार गिर्द व गिर्द मलायक असवार दा हो दस्तर से जिब्राइल याया दस्तर सेमिकायल पीठ खेल रखे इ आफिल पेट रखे इस्राइल दस्त चप हसन दस्त रास्त हुसैन पेशवा मुहम्मद गिर्द व गिर्द अली लाइलाह का कोट इल्लिल्लाह की खाई हजरत अली की चोकी बैठी मुहम्मद रसूलिल्लाह की दुहाई"

इस मंत्र को पढ़ता हुआ अपने चारों तरफ हाथ के इशारे से या पानी से कार बनाले ऐसा सात बार करना चाहिए।

कार्य सिद्धिकर प्रयोग

"गणपत वीर भूखे मसाण फल मांगू सो फल देत गणपत देखे गजपत डरे गणपत के छात्र से बादशाह डरे मुख देखे राजा प्रजा डरे हाता चढ़े सिन्दूर औलिया गौरी का पुत्र गुगल खेय करूंगा ढेरी रिद्ध सिद्ध गणपत लाये घनेरी *गिरनार पति ओम् नमो स्वाहा*".

इस मन्त्र को बुध या शुक्र या शनिवार से प्रारम्भ करें और चालीस दिन तक पढ़े। मन्त्र जप करने की जगह किसी एकान्त स्थान में हो तो ठीक अन्यथा घर में भी करे तो उस मकान में दूसरे लोग आना जाना न

करें तो ठीक रहे। धूप बत्तीसा (अगरबत्ती के एवज) काम में लाना चाहिए और दीपक घी का जलावे। दीपक किसी भी ऐसी चीज पर रख देना चाहिए जिससे वह धरती से एक फुट ऊंचा रहे। इसके साथ दो तोला सिन्दूर अपने सामने रख लेनी चाहिए जिस पर मन्त्र पढ़ना है। मन्त्र को प्रतिदिन रात्रि के समय सवा सौ बार जपना है। यों तो प्रतिदिन एक लड्डू प्रसाद चढ़ाकर यह कार्य करे और इस प्रसाद को बालकों मे वितरण कर दे। चालीसवें दिन सवा सेर लड्डू का प्रसाद चढाना चाहिए। चालीसवें दिन (इससे पहले भी सम्भव है) बालक के रूप में इस मन्त्र के देवता प्रकट होते हैं, उनसे जो चाहे सो वर मांग ले। वर मे कामधेनु और कल्पवृक्ष जैसी चीज नही मांगी जाती हैं क्योकि मन्त्र का स्वरूप और मात्रा जितनी हल्की है उसी स्तर का उनका स्वरूप रहेगा और उतनी ही शक्ति उसमें रहेगी। मेरी समक्ष मे कोई तात्कालिक समस्या का समाधान और समय पड़ने पर सहायता करने का वचन ले लें। प्रत्यक्ष प्रकट न होकर कभी-कभी आवाज भी आ जाती है आवाज के उत्तर में वही मांगे कि समय पर मेरा काम कीजिये और मेरे साथ रहिये। मन्त्र जाप करते समय जो सिन्दूर रखा था उसे पुडिया में बन्द करके रख ले। प्रयोग सम्पूर्ण हो जाने के बाद एक सप्ताह तक सिन्दूर से काम न लें, इसके बाद जब कभी ऐसा कोई काम हो जिसमे दूसरे से कोई काम हो तो इसी मन्त्र को फिर से सिन्दूर पर सात बार पढ़कर टीकी लगा ले।

वेताल साधना

विक्रमादित्य के किस्सों में वेताल का वर्णन आता है। दूसरे किस्सों मे भी वेताल का जिक्र आता है। यह साधना तंत्र काल से ही प्रचार मे आई है। कई तांत्रिक ग्रन्थों में भी वेताल का उल्लेख किया गया है। वेताल शक्ति का एक प्रतीक है और अनेक प्रकार के काम यह कर सकता है।

मन्त्र

"ओम् आगिया वेताल महा वेताल बैठ वेताल अग्नि अग्नि अग्नि तेरे मुख मे सवामन अग्नि महा विकराल फट् स्वाहा"

विधि—थोड़े से उड़द लाकर अपने सामने रख लें और थोड़ा घास-फूस भी। प्रतिदिन एक सौ आठ बार पढना है और हर मंत्र के साथ दो चार दाने उड़द के फूस पर डालने हैं। ऐसा इक्कीस दिन करना है। नैवेद्य के लिए पंच मेवा (दाख,'छुआरा, बादाम, चिरौंजी और चिलगोजा) पास में रखें। उड़द घास पर डालते-डालते एक क्षण ऐसा आ जाता है। जब बिना आग दिखाये फूस जलने लगता है इस प्रकार आग लग जाने का अर्थ होता है वेताल का प्रकट होना। आग के प्रकट होते ही दाहिने हाथ से मेवे का प्रसाद दे देना चाहिए। यदि वेताल साकार रूप में प्रकट हो जाय तो डरना नही चाहिये। श्रद्धा और प्रणते भाव से उसे नमस्कार करके निवेदन करना चाहिए कि आप मेरी जीभ पर विराजमान हो जाएं। वेताल के निवास करने के तीन स्थान हैं—दाहिने हाथ का अंगूठा, आँख और जीभ। जीभ में रहने पर यह स्मरण करने पर ही इच्छित कार्य कर देता है। यह साधना रात मे की जाती है।

वशीकरण प्रयोग

"काली काली महाकाली ब्रह्मा की पुत्री इन्द्र की साली कामरूप देश कामाख्या देवी जहां बसे इस्माइल जोगी इस्माइल जोगी बायी बाडी-बाडी में निपजे लौंग सुपारी एक लौंग राती माती दूजी लौंग बतावे छाती हँसती आवे खेलती आवे कूदती आवे सेज में रल जावे हमारी बुलाई नही आवे काला भूत बुलाकर लेकर आवे, बावरा भूत की बुलाई नही आवे काला भैरू बुलाकर लेकर आये, काला भैरू की बुलाई नही आवे, वीर हनुमान बुलाकर लेकर आवे पिण्ड काचा चलो मन्त्र ईश्वर वाचा, वाचा चूके तो धोबी की कुण्डी में पड़े तेरी माता अंजनी का पीया दूध हराम करे।"

विधि—नई छोटी हंडिया लाकर उसमे दूध और पानी मिला कर

सराई (हंडिया ढकने का मिट्टी का बर्तन) से ढँक दें। सराई मे छेद करके तुलसी डंठल उस छेद मे से होकर हंडिया में रख दें डंठल इतना बड़ा हो कि रखने के बाद भी थोड़ा ऊपर दिखता रहे। मंगलवार के दिन आधी रात के समय नग्न होकर यह मन्त्र उस हंडिया के सामने बैठकर एक सौ आठ वार पढ़ें। यह प्रयोग मंगल से शनि या अगले मंगल तक किया जाता है। मिश्री, सुपारी, लौंग, और इलायची का प्रसाद उस हंडिया के सामने रखा जाता है। इसके अलावा घूघरी, बाकला (गेहूं को उबालने पर घूघरी कहलाते हैं और चोला उबले हुए बाकला कहलाते हैं) तेल, सिन्दूर, गेहूं की मोटी रोटी भी अपने पास रखनी पड़ती है। प्रतिदिन लौंग वगैरह का प्रसाद पहले चढ़ाना होता है और घूघरी, बाकला, तेल सिन्दूर गेहूं की रोटी पर रखकर जप समाप्ति पर चढाना होता है। साधना के दौरान यदि किसी दिन ऐसा आभास हो कि कोई छाया सामने है तो यह रोट वाला प्रसाद लेकर उस अनामिका या कनिष्ठा अंगुली का रक्त लगाकर उसके अर्पित कर देना चाहिए। और निर्भय होकर वशीकरण सिद्धि के लिए प्रार्थना करनी चाहिएं। प्रसाद को कुत्तों को खिला देना चाहिये या धरती मे गाड़ देना चाहिए। इसके बाद जिस किसी पर भी वशीकरण करना हो उसे लौंग, मिश्री, सुपारी, इलायची ये सारा या इनमें से कोई एक चीज पर एक सौ आठ बार पढ़ कर खिलाने से वशीकरण होता है।

कुछ काम्य प्रयोग

हमारे भारतीय ऋषियो की शैली की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जिस भी किसी विषय का विवेचन किया उसका चूडान्त और तलस्पर्शी विश्लेषण किया है। मन्त्र जैसा विषय ब्रह्म का स्वरूप है इसलिए इसका क्षेत्र तो अत्यन्त व्यापक होगा ही। पुराणों में लिखा गया है कि रोग और

देह कष्ट वस्तुतः व्यक्ति के अपने दुष्कर्म हैं, जिनका फल भोगना पड़ता है और व्याधियाँ एक प्रकार के दण्ड हैं।

मन्त्र शास्त्र की मान्यता है कि भौतिक कर्म शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण ये छः कर्म ही संसार में अलक्षित प्रकृति के धर्म के रूप में चलते रहते हैं। वात, पित्त और कफ के कारण उत्पन्न होने वाले रोग इन्ही कर्मों के कृत्रिम लक्षण हैं। इस मान्यता मे विरोधाभास नही है क्योंकि मारण, मोहन जैसे कर्म मूलतः मानसिक जगत् को और प्रसंगानुसार वैद्युतिक शरीर को प्रभावित करते हैं उनसे (मन.शरीर और वैद्युतिक शरीर से) नीचे या स्थूल शरीर हमारा यह देह है। मानसिक जगत् में जो अनुभूतियाँ त्रिगुणात्मक हैं वे ही पाँच तत्त्वों वाले इस देह में वात, पित्त कफ नाम के दोषों मे हैं। मनःशरीर में दोष नहीं हैं और भौतिक देह मे गुण नही हैं फिर भी इन दोनों की एक दूसरे के बिना सत्ता नहीं बिल्कुल भिन्न गुणधर्मा होकर भी ये एक दूसरे से प्रगाढरूप से जुड़े हुए हैं।

अर्वाचीन काल में—याने सावर तंत्र के उद्‌भव और विकास के युग से—नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय के तपस्वी महापुरुषों ने मन्त्रों की विद्या और शैली मे समयोचित संशोधन करने का युगोपयोगी कार्य किया था। गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्र नाथ जैसे व्यक्तियो ने समय क्रम से आये ह्रास को देखकर मन्त्रों की साधना विधि में आवश्यक परिवर्तन किये किन्तु यह परिवर्तन या तो सम्प्रदायों की अपनी रहस्यवार्ता रही या जानकर लोगो ने इसे लोकहित मे प्रकाशित नहीं किया।

उन सज्जन का नामोल्लेख किए बिना मैं आभारी हूं, जिन्होंने नाथ सम्प्रदाय के एक अतिवृद्ध व्यक्ति के पास अपने प्राणों के समान सुरक्षित और गुप्त पुस्तक में से कुछ महत्वपूर्ण पृष्ठ नकल कर लिये थे और मुझे सौंप कर निश्चिन्त से हो गये थे।

पुस्तक में वर्णित तथ्यो को कारणवाद की कसौटी पर कसने से उन्हें यथार्थ पाया और जनहित की दृष्टि से उसे प्रकाशित कर दिया। मेरा विश्वास है—ये संशोधन हमें सफलता प्रदान करने में सहायक होंगे यद्यपि तांत्रिक मत्रों में ये आवश्यक नहीं हैं फिर भी निश्चित सफलता के लिए

एतियात के तौर पर इनको कर लेने में कोई आपत्ति नही है।

असल मे हमें मत्स्येन्द्र नाथ (मछन्दर नाथ) का आभारी होना चाहिए कि उन्होंने शाबर मंत्रों को विभिन्न भाषाओं में अनूदित करके दिया। शाबर मन्त्रों में भाषा की दृष्टि से दुरूहता या जटिलता नही होती, उनमें शब्द का अपना करिश्मा या शब्द की शक्ति गौण रहती है श्रद्धातत्त्व प्रमुख रहता है इन मन्त्रो में सिद्ध पुरुषों या देवताओं की आन और सौगन्ध ही सिद्धिप्रद रहती है अन्यथा मन्त्र तो हमारी भाषा मे कही जाने वाली इबारतें हैं।

इन मन्त्रों के ऋषि नाथ या सम्प्रदाय के महापुरुष होते होते हैं और देवता भी कोई प्रसिद्ध और तपस्वी महापुरुष ही होते है। श्रद्धा शक्ति और विश्वास ही इनका बीज होता है। छन्द नाम का तत्त्व भाषा का स्वाभाविक धर्म होने के कारण रहता है अन्यथा छन्द शास्त्र द्वारा निर्धारित छन्द नही हुआ करता। ऐसे मन्त्रों के साधन करने के पूर्व किसी तरह का विनियोग नही किया जाता बल्कि इन सिद्धों को गुरुवत् मानकर श्रद्धा सहित स्मरण कर लिया जाता है।

असल मे शाबर सम्प्रदाय में गुरु को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और गुरु के प्रति श्रद्धा ही सर्वोपरि ध्यातव्य तत्त्व है। मत्स्येन्द्र नाथ को सिद्ध देवता का पद दिया गया है।

शान्ति (रोग एवं द्वेष जनित विपदाओं से मुक्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण ये छः कर्म माने गये हैं। आकर्षण और सम्मोहन वशीकरण के अन्तर्गत माने जाते हैं। स्तंभन का अर्थ है रोकना जैसे किसी की यात्रा को रोकना, निगाह को रोकना (दृष्टि बंध) मुख बन्धन आदि। उच्चाटन एक प्रकार से मानसिक विक्षेप है जिससे आदमी का एक जगह मन नहीं लगता, उखड़ा-उखडा रहता है। इसी की तीव्र स्थिति पागलपन जैसी हो जाती है।

इन कर्मों की देवता—शान्ति कर्म की रति, वशीकरण की वाणी, स्तंभन को रमा, विद्वेषण की ज्येष्ठा, उच्चाट-की दुर्गा और मारण की कालिका है।

शान्ति कर्म के लिए रति देवता की मूर्ति बनानी चाहिए। कुम्हार के

चक्के से या बर्तन बनाते समय कुम्हार के हाथ से गिरी हुई मिट्टी से बनानी होती है। चार भुजा और अष्टमंडल वाली मनोहर मूर्ति चार अंगुल जितनी बडी रहे। इस मूर्ति की पूजा पंचोपचार मे करनी चाहिए। गंध के लिये कपूर, कस्तूरी, गोरोचन और चन्दन का उपयोग किया जाय। रति देवता के साथ ही रतिपति की पूजा भी की जाय। पुष्पों में अशोक वृक्ष के फूल, नैवेद्य मे खीर पूये या गाय के दूध की कोई वस्तु काम मे लेनी होती है। दशांश हवन में कुश, सफेद दूब, राई या सरसों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

किसी भी शान्ति कर्म का अनुष्ठान करने से पहले रति व रतिपति की पूजा उपर्युक्त विधि से करने के बाद इस मन्त्र का यथा सुविधा जप करने से शीघ्र फल मिलता है। मंत्र है—

"क्ली ऐं सौ ग्लौं हुम् ई, कं कन्दर्प शक्ति सकल कला कलाप निपुणे इक्षुचरासन पंच बाणान्विते सकलरोग निर्मा शिने खगान् मारय मारय क्लीं रसाम्बायै एहि एहि स्वाहा"

देह रक्षा के लिये सूर्य, नृसिंह, राम, शंकर के मंत्रो का अनुष्ठान किया जाता है। घर में सुख शान्ति बनाये रखने के लिए गणपति का अनुष्ठान अनुकूल रहता है।

"शान्ति के लिए शारदा का भी एक मंत्र है—ह्री क्षं ईं हें श्री श्री महालक्ष्मी सकलजन्तु वृत्ति विरोधिनी स्तंभय एहि एहि हुं फट् स्वाहा"

विधि—रविवार या शुक्रवार को हस्त नक्षत्र जिस दिन आ रहा हो उस दिन समुद्र तक जाने वाली नदी के दोनों तटों की मिट्टी लाकर रति देवता के पास रख दें अगले शुक्रवार को शारदा की मूर्ति बनावे जिसके चार हाथ, दो आँख, हाथ मे कलम और पुस्तक धारण किए हुए बनायें। गोरोचन, कस्तूरी और कपूर इस मिट्टी में मिलायें और गंध (तिलक के लिए प्रयुक्त) में भी इनका उपयोग करें। इस मूर्ति को ढाक की जड़ मे स्थापित कर चम्पक के फूल और शहद का नैवेद्य चढ़ाकर उपर्युक्त मंत्र का जप करें। हवन मे पहले वाले प्रयोग मे वर्णित वस्तुओ का उपयोग करना चाहिए।

यह अकाट्य तथ्य है कि किसी भी मंत्र से काम लेने लिए सिद्ध करना आवश्यक होता है। सिद्ध करने की परम्परा हमारे लोक व्यवहार और दैनिक जीवन मे भी सिद्ध करने की मर्यादा मानी जाती है। जो भोजन हम करते हैं, जो वस्त्र हम पहनते हैं और तो और जिस तरह हम चलते हैं ये सब सिद्ध अवस्थायें हैं इनके लिए हमने साधना की थी। यह दूसरी बात है कि कुछ चीजें आसानी से और जल्दी सिद्ध हो जाती हैं और कुछ देर से व मुश्किल से। भोजन बनाने मे भी सिद्धता हमें कितनी साधना के बाद मिलती है—यह हम जानते हैं फिर मंत्र की साधना में अगर यह शर्त है तो हमे आपत्ति क्यों हो ?

ये मंत्र जो इस प्रकरण मे लिखे जा रहे हैं, गुरु मत्स्येन्द्र नाथ द्वारा निर्दिष्ट हैं इसलिए युगानुरूप भी हैं और अपेक्षया कम समय मे ही सिद्ध भी हो जाते हैं। इस तथ्य को दुहराने की आवश्यकता नही है कि वशीकरण की देवता वाणी है इसलिए इन प्रयोगो को करने से पूर्व वाग्देवता की पूजा और उनके मंत्र का जप कर लेना चाहिए किन्तु वाग्देवता में गायत्री मन्त्र का जप अभीष्ट नही है।

"ऐं ओं औं हं हां ग्लो हू क्षं 'सर्वजन वंशीकरी त्रिजगन्मोहिनी 'त्रैलोक्यं में वश मानय एहि एहि ब्रह्माणि वर्णमये सकलशब्दमये सर्वं मे वशमानय स्वाहा"

इस मंत्र को सिद्ध कर लेने के बाद किसी भी वस्तु को एक सौ बार अभिमंत्रित करके देने से वशीकरण हो जाता है। जिस व्यक्ति पर वशीकरण करना हो उसका कोई पहनने का कपड़ा या खाने की वस्तु या कोई अन्य उसके उपयोग की वस्तु अभिमंत्रित करके दी जाती है तो वशीकरण होता है।

इस मंत्र में यह विशेषता है कि इसे किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेकर नहीं किया जाता बल्कि सिद्ध कर लिया जाता है। बाद मे किसी भी व्यक्ति पर इसका प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् सिद्ध होने पर इसकी शक्ति को किसी भी माध्यम मे केन्द्रित किया जा सकता है या

आवेशित माध्यम प्रबल शक्ति सम्पन्न होकर अपना प्रभाव दिखाता है।

विद्वेषण

मंगलवार को श्मशान भस्म लाकर करंज के तेल से व पानी में गूंदकर मूर्ति बना ले। मूर्ति के दो हाथ और सामान्य आकार की हो। इस मूर्ति को नीम के जड़ मे रख दे नीम और आक के पत्ते से पूजन करें और नीचे लिखे मन्त्र का जप करे। इस मन्त्र मे जहां खाली स्थान है वहां दोनो व्यक्तियों का नाम उच्चारण करें। मन्त्र के यथेष्ट जप करके दशांश हवन करना चाहिए। हवन करंज के तेल से करे और हवनीय द्रव्य मे नीम और आक के पत्ते, कौये और उल्लू के पंख, कंकोल के पत्ते, नमक और राई, धतूरे और करंज के बीज हो। इन युग्मों (कंकोल अकेला है शेष के जोड़े हैं) मे से किसी भी एक युग्म का दशांश हवन करे।

यह कार्य शनि, रवि या मंगल से प्रारंभ करना चाहिए। और दक्षिण की तरफ मुख करके बैठना चाहिए।

मन्त्र है—

"ह्रीं घर्मटिके घर्मटिके कर्मटिके कर्मटिके घोरे घोरतरे······योः विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा काकोलूकवद् गो व्याघ्रवद् मार्जारमूषकवद् विद्वेषणं कुरु कुरु ज्येष्टायै ज्वालय विद्वेषकारिणि एहि एहि घ्रं घ्रं मीं फट् स्वाहा"

उच्चाटन

विधि—कुम्हार के हाथ से गिरी मिट्टी, श्मशान की साफ राख (भस्म) श्मशान में बिखरा अन्न इन तीनों को समान मात्रा में लेकर चूर्ण करके दुर्गा जी की सर्वांग युक्त मूर्ति बना लें, सिरीस के पुष्पों से पूजा करके राई नमक का दशांश हवन करे। इस मूर्ति के समक्ष बैठकर उच्चाटन के मन्त्र का जप करें।

मन्त्र है—

"ओम् नमो जातवेदसे दुर्गायै जगज्जीवन कारिण्यै हुम् ग्लो दुं दुर्गायै उच्चाटय उच्चाटय एहि एहि हुम् फट् स्वाहा"

आवश्यकता समझने पर उच्चाटय शब्द से पहले उस व्यक्ति का नाम (उक्त मन्त्र में) और जोड देना चाहिए अन्यथा कल्पना मे खो रहे ही ना।

वशीकरण (सम्मोहन) के विशिष्ट मन्त्र

"क्ली ऐं सौं ह्री श्री ग्लौं हुम् सकल जगन्मोहिनी मदनो न्मादिनी क्लीं एहि एहि क्लीं क्लीं सम्मोहय सम्मोहय बुद्धि नाशय नाशय जीव मोहिनी लागो मोह जिनु जिनु जावो मकरे तो मोहूं आदि शक्ति को आस राज मन्मथ की आन फुरो आगम मत्यो मेरी शक्ति गुरु की शक्ति ईश्वर तेरी वाचा"

इस मन्त्र संस्कृत और गौड देश की भाषा (प्राचीन गौड देश) दोनों में ग्रथित है। यह अर्वाचीन है और आदि नाथ द्वारा निर्दिष्ट है। इसे कम संख्या में जपने पर ही यह सिद्ध हो जाता है। सिद्ध हो जाने पर इक्कीस बार किसी भी वस्तु को अभिमंत्रित करके खिलाने, पिलाने, पहनने की वस्तु को देने से वशीकरण हो जाता है।

वशीकरण का केरल भाषा का मन्त्र

"क्ली सकल जगन्मोहिनी ह्री मलयालं भगवति सकल संभूत सम्मोहिनी क्लीं कोडुमारू बुद्धि कडुतु पूभकि कोडवा मलयाल भगवति कोडुआ "ईश्वराणे डमकू उमाणे उमच्छू भूपतु मक्कोटि देवा बच लाणे कोडुआ मलयालम भगवति क्ली गुरु प्रसादम्"

मातृकाओ का पूजन कर इस मन्त्र को सिद्ध किया जाता है। सिद्ध मन्त्र से खान, पान, धारण करने की किसी भी वस्तु को अभिमन्त्रित करके देने से वशीकरण होता है।

इस मन्त्र के सम्बंध में लिखा है कि इसे बहुत कम संख्या मे जपने पर ही सिद्ध हो जाता है और सिद्ध हो जाने के बाद उत्तर की ओर मुख करके

इक्कीस वार जप करने मे ही वशीकरण हो जाता है और तो और इसकी विशेषता का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि इसके प्रभाव से स्थावर और जंगम सभी वश मे हो जाते हैं। आदमी स्वय इस मंत्र से अभिमंत्रित कोई वस्तु खाकर या पहनकर अपने अभीष्ट व्यक्ति के सम्पर्क में जाता है तो वश मे कर लेता है अथवा उसे खाने-पीने के लिए किसी भी वस्तु को अभिमंत्रित करके देता है तो भी वशीकरण हो जाता है।

वशीकरण का कर्नाटक मंत्र

"नमो भगवति मदन मोहमये पंचभूत मोहिनि चतुर्विध जीवगंलतु मोहिसु तन्नो नो उदेकण सुरित वयलिन्न काणा कालुकं प्याउये कल बहु-द्रिवोडि वरलिवार द्विट्टे महामायणि काल भैरवराणे ब्रह्म विष्णु महेश्वरणि श्रीराम इन्तनाणे क्लीं मोहिनि क्लीं मोहिनि मोहिसु मोहिसु निनेगे निन्ताणि मोहिसु ओम् गुरु प्रसादं"

ये मन्त्र शाबर पद्धति के है और इनमें प्रान्तीय भाषाओं को मन्त्र का स्वरूप दे दिया गया है। यथेष्ट मात्रा मे जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यथेष्ट लिख कर मात्रा को स्पष्ट न करने के पीछे यही तात्पर्य है कि पांच हजार संख्या इसका मध्यमान है। होने से इससे कम सख्या में भी सिद्ध हो सकता है किन्तु साधक की श्रद्धा, एकाग्रता और पात्रता पर निर्भर करता है। दशांश होना आवश्यक अंग है ही।

मंत्र सिद्ध हुआ या नही इसकी परीक्षा करने के लिए इक्कीस वार अभिमंत्रित करके कोई वस्तु उस व्यक्ति को दे जिस पर वशीकरण चल जाता है तो मंत्र सिद्ध मान लिया जाना चाहिए अन्यथा मन्त्र साधन के समय में ही स्वप्न या अन्य प्रकार के दृष्टान्त हो जाया करते हैं।

इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर किया गया वशीकरण यावज्जीवन रहता है।

वशीकरण का गुजराती मंत्र

"क्लीं सकल जगन्मोहिनि पंचभूत पंचित सपंच तत्त्वे चतुर्विधि जीवान्मोहय आसो पगुतले चमेन बांधो मोहि वश्य करी न करे तो हनुमत

की आण कालभैरव की आण तेरी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र काल रुद्र"

विधि—जैसा प्रारंभ में लिख दिया गया है पहले वशीकरण कारक देवता की पूजा और कम-से-कम एक माला मंत्र जप करके सप्त या षोडश मातृकाओं का पूजन करके इस मन्त्र का जप करे। सिद्ध करते समय भी मंत्र जप के पश्चात् जब दशांश हवन किया जाय उस समय अभीष्ट (जिस पर वशीकरण किया जाना है उस) व्यक्ति का नाम लेकर शहद में डुबोये मल्लिका की एक सौ आठ आहुतियां दे। इस प्रयोग को नियमित रूप से करने पर शत्रु भी वश में हो जाता है।

मन्त्र सिद्ध हो जाने पर कांजी या छाछ को कम से कम एक सौ बार मन्त्र से अभिमंत्रित करके अन्न पर छिड़क देने से उस अन्न को जो भी खायेगा वह वशीभूत हो जायेगा। इस अन्न का उपयोग छः दिन तक होता रहे तो अवश्य वशीकरण होता है।

वशीकरण का आंध्र मन्त्र

"नमो भगवति सकल जगन्मोहिनि पंचितप्रकाश पंचतत्वे क्लीं एहि क्लीं चतुर्विधि जीविलुन्मोहि चं कुटिकानि कुनीमाननी कुबीर मद्रनाननी कुसुमस्ये मुककुटि देवतुला न त्रिमूर्तु लान आदि शक्ति इनंनाकु मोहि पंचाय फुटे क्लीं सम्मोहिनि क्लीं गुरु प्रसादम्"

विधि—इस मन्त्र के संबंध में लिखा गया है कि मातृकाओं की पूजा करके नित्य एक सौ लाल करवीर (कनेर) के फूलों को शहद में डुबोकर हवन करे। अधिक जप कर सके तो उत्तम है अन्यथा एक सप्ताह तक नियमित मन्त्रोच्चारण सहित हवन करने से वशीकरण हो जाया करता है।

वशीकरण का गौड मंत्र

"ऐं क्लीं सौं सर्वजन मनो हारिणि मतृंग कुल मंगलागि असक्रन्मदिरामोदचरिते अनौपम्यचरिते ऐं ह्रीं क्लीं गुलामातंगि जनमनोरंजनकारि मन मोहि भगवति शुवुक्ति कामगंनि फुरो, ईश्वर मंत्रयते वीर वाचा"

विधि—काली या चण्डिका के मन्दिर में कृष्णपक्ष की अष्टमी से

यदि इस प्रकार सिद्ध किये मंत्र से अपने हाथ की अनामिका अंगुलिका रक्त किसी भी पेय पदार्थ में मिला दिया जाता है तो सभी पीने वालों को वश मे कर सकता है अथवा इससे अभिमंत्रित सिन्दूर या चन्दन का तिलक लगा कर जिस सभा में बैठता है उसे प्रभावित एवं आकर्षित करता है ।

वशीकरण के सम्बन्ध में लेखनीय वक्तव्य

वशीकरण का सीधा अर्थ होता है वश मे करना। वशीकरण की आवश्यकता केवल कामवासना से प्रेरित होने पर ही नहीं होती दूसरी परिस्थितियों में भी हो सकती है । कई परिवार ऐसे देखे हैं जिनमें पति की विमुखता ने पत्नी के जीवन को विषाक्त कर डाला है तो कई बार सरकारी अधिकारियों के एकांगी और रूढ दृष्टिकोण के कारण लोग भयातुर होते रहते हैं तो कई बार पारस्परिक वैमनस्य को लेकर पीढ़ियों तक चलने वाली शत्रुता के बीज बो दिये जाते हैं ऐसी अनेकों अप्रिय स्थितियां आती हैं जिनके कारण हम अनावश्यक तनाव, कुण्ठा, द्वेष भोगने लगते हैं । वशीकरण इन परिस्थितियों से त्राण देता है, हमारे जीवन को अनावश्यक विषमताओ से बचाता है ।

वशीकरण यद्यपि अभिचार कर्म में गिना जाता है। किन्तु सफलता की दृष्टि से ही। अपनी निग्रह और अनुग्रह नाम की सिद्धि वशीकरण के स्तर हैं । अपनी स्वार्थपूर्ति के निमित्त वह भी काम वासना से प्रेरित होकर किया गया वशीकरण निन्दित माना गया है। वात्स्यायन ने वशीकरण के प्रयोग लिखते हुए यह कहा है कि परस्त्री का वशीकरण निन्दित कर्म है (इससे सामाजिक विश्रृंखलता तो फैलती ही है इसके साथ ही जिस स्त्री पर यह प्रयोग किया जाता है वह भी मार्गच्युत होती है) फिर भी काम कुण्ठा इतनी भयानक होती है कि इससे अनेक प्रकार के दैहिक और मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । रातों की नीद, दिन का चैन हराम हो जाता है, कर्मोन्माद की दस अवस्थाओ में नवी पागलपन है और दसवी मृत्यु । जीवन अमूल्य है यदि ऐसी परिस्थिति आ जाय और व्यक्ति अपने पर नियन्त्रण नही रख सके तो ये प्रयोग कर लेने चाहिए समाज मे स्नेह और अपनेपन का प्रसार करने के लक्ष्य से यदि वशीकरण किया जाता है अथवा द्वेष के पंक को धोने के लिए किया जाता है तो यह पुण्य कार्य है ।

चाहे हमारे देवता हों, ऋषि हों, तपस्वी हों या प्रकाण्ड पंडित हो उनमें स्वाभाविक रूप से वशीकरण शक्ति प्रकट हुआ करती है जिसे ऊपर निग्रह और अनुग्रह के नाम से लिखा गया है। निग्रह का अर्थ होता है सामने वाले व्यक्ति की विपरीत गामी विचार तरंगों को रोकना और अपने नियन्त्रण में लेना और अनुग्रह का मतलब होने का अर्थ होता है प्रसन्नता कृपा, आभार। सात्विक रूप से जो वशीकरण की सिद्धि आती है उसमे सामने वाला व्यक्ति अनुग्रहीत-सा रहता है।

किसी कठोर हृदय स्वामी के अधीन रहने वाले सेवक में अपने स्वामी के अधीन रहने में भी वशीकरण है और किसी तपस्वी या विद्वान व्यक्ति के सम्पर्क मे जाने पर हमारे मन मे जो आदर और श्रद्धा के अतिरेक के कारण समर्पण की भावना व्यक्त होती है वह भी वशीकरण ही है इन दोनो स्थितियों मे होने वाले वशीकरण में जो अन्तर है वही सात्विक, राजस् और तामस वशीकरण में अन्तर होता है। शत्रु नाशन-किसी खास व्यक्ति या लक्ष्य के बिना प्रयोग भी शनैः शनैः कालान्तर में वशीकरण की निग्रह शक्ति को प्रकट करता है।

मंत्र शास्त्र मे नारी वशीकरण के अनेक और अधिक प्रयोग दिये गए हैं। वात्स्यायन जैसे महर्षि न कामशास्त्र की सीमा से रहने के कारण स्त्रियो के वशीकरण से प्रयोगो मे भी बहुत विस्तृत वर्गीकरण किया है। कन्या, राजदारा, स्त्री, वेश्या जैसे वर्ग बनाकर हरेक के लिए भिन्न-भिन्न प्रयोग दिए हैं।

ऊपर जो प्रयोग चुने गए हैं उनमे विविधता का दृष्टिकोण रखा गया है। राज वशीकरण (राज्यधिकारी को वश मे करना स्वामी वशीकरण सेवक वशीकरण जैसे प्रयोग यहां विशेष शीर्षक के अन्तर्गत नही दिए गए। दूसरी पुस्तक मे ऐसा विभाजन और वर्गीकरण किया गया है फिर भी यहाँ वर्णित प्रयोग एक दूसरे से भिन्न भी हैं और विशिष्ट भी यह तथ्य इन प्रयोगों को पढते समय सामने आ जाएगा। संस्कृत के मंत्रो मे क्षेत्रीयता नही होती किन्तु ये मिश्रित साबर मत्र हैं। साबर मंत्रों मे लोक भाषा का व्यवहार होता है। आंध्र, कर्नाटक या गुजरात मे रहने वालों और प्रान्तीय भाषा बोलने वालों के लिए हिन्दी के साबर मंत्र भी संस्कृत के जितने ही,

कठिन रहेंगे इसलिए पूर्वार्ध संस्कृत का और उत्तरार्ध प्रादेशिक भाषा का रखकर इन मंत्रो का निर्माण किया गया है। जिससे इन भाषाओं को बोलने वाले लोगों को सुविधा रहे।

यह आवश्यक नही है कि हिन्दी भाषी कर्नाटक साबर मंत्र का जप न करे या केवल कर्नाटक भाषी ही करे बल्कि जो व्यक्ति इस भाषा को स्पष्ट और समुचित लहजे में अर्थ समझते हुए बोल सकता है वह भी कर सकता है।

वशीकरण के सम्बन्ध मे वात्स्यायन ने कहा है कि वेश्यायें धूर्तो और विटो पर आसक्त रहती हैं। मेरा अपना विचार है कि अधिकांश स्त्रियां उन व्यक्तियों पर आसक्त हो जाया करती हैं, जो वाचाल और झूठी प्रशसा करने वाले पाखण्डी हुआ करते हैं। वैसे स्त्री का स्वभाव है कि प्रायेण भूमिपतयः प्रमदाः लताश्च, यः पार्श्वे वसति त परिवेष्टयन्ति" राजा, लता और स्त्रियाँ जो पास में होता है उसी के लिपट जाती हैं।

उत्तम वशीकरण वाणी का होता है। संस्कृत (सम्य) वाणी की शक्ति अमोघ है। समाज को दिशादृष्टि और क्रान्ति को जीवन देने वाली वाणी ही है। वाणी में शक्ति साधना से आती है। भगवान् की भक्ति और किसी मंत्र के जप करने से भी शक्ति आती है। चिन्तन और शास्त्रों के अभ्यास से अन्तर्ज्ञान का विकास आता है, विचारों में उदारता आती है और ये सारे गुण व्यक्ति की वाणी का संस्कार करते हैं।

वाणी आदमी के पूर्व जन्मार्जित कर्मों के आधार पर मिलती है किन्तु उसे शक्ति सम्पन्न प्रभावशाली या वश मे कर देने की योग्यता व्यक्ति का अपना कर्म है यह गुण शुद्ध रूप से प्रयत्न और साधना प्राप्त हो सकता है।

उच्चाटन का कर्णाटक मंत्र

"नमो भगवति श्मशानवासिनी सकलभूत भयंकरि सर्वोच्चाटनकारिणि कालरुद्रेन क्रोधने वशरकारि उल महाशक्ति ना तो निदवर उच्चाटन माडु माडु दिद्दनेनि नगे कालरुद्राणे कंद्रिका मक्षिपाणे कावेरी जम्बुकेश्वरनाणे गुरुशक्ति ह्रीं गुरु प्रसादम्"

विधि—दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके मध्यरात्रि में या मध्याह्न में नंगा होकर छ हजार जप करे। मंगलवार से यह प्रयोग प्रारम्भ करना होता है। सात दिवस इसका जप करके आठवें दिन अर्धरात्रि के समय श्मशान से लाई आग में इस मंत्र से कौवे और उल्लू के पंखों का हवन करे। अथवा, मंगलवार के दिन श्मशान से मुर्दे की राख लाकर एक हजार बार अभिमंत्रित करके जिस व्यक्ति के सिर पर डालेगा उसका उच्चाटन होगा।

उच्चाटन का केरलीय मंत्र

"कालि कालि महाकालि महाकालि ग्लौं कालरात्रि कान्हेश्वरी एहि-एहि'''म् उच्चाटय देश ललु तोर दादि इरदाल देवि आर्णे पुतोलुं तोरतादि इंदालु उमा महेश्वर राणें विष्णुतोर तामसु इरंदाल वीरभद्र ओम् कालि-कालि महाकालि महाकालि, ओम् गुरु प्रसादम्"

विधि—इस मंत्र के ऋषि नित्यनाथ हैं। मूलत. यह मंत्र द्रविड़ भाषा का है। इसे किसी ऐसे देवी मंदिर में जो काली या चण्डी का हो और निर्जन प्रदेश में हो, जपना चाहिए। बारह सौ जप प्रतिदिन करने चाहिए। मल्लिका के पुष्प चढाने चाहिए। तथा पंचोपचार से पूजन करना चाहिए। सात रात तक ऐसा करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। दशांश हवन या एक हजार आहुतियां देने से कार्य सम्पन्न हो जाता है। हवन में राई और नमक की आहुति देनी चाहिए। तीन हजार जप करने पर अवश्य सफलता मिलती है।

मंत्र सिद्ध हो जाने पर कोयल की बीट (विष्ठा) को एक हजार बार अभिमंत्रित करके जिसके घर मे डाला जाएगा उसका पन्द्रह दिन में उच्चाटन होगा। कौवे और उल्लू के पंखों को एक सौ बार अभिमंत्रित करके जिस व्यक्ति के घर मे रख दिया जाएगा उसका भी उच्चाटन होगा। ब्राह्मण और चाण्डाल की भस्म को एक साथ मिलाकर एक सौ बार अभिमंत्रित कर रविवार के दिन जिसके घर में डाला जाएगा उसका उच्चाटन होगा। नीम की खूंटी या किल एक सौ बार अभिमंत्रित करके जिस घर में ठोक दी जाएगी उसमें रहने वालों का उच्चाटन हो जाएगा।

रविवार के दिन आक के पत्तों को एक सौ बार अभिमंत्रित करके किसी के घर में डालने से उच्चाटन होगा।

इस प्रकार उच्चाटन से व्यक्ति की आय के स्रोत कम होने लगते हैं, और, उस मकान मे उसे अच्छा नही लगता, मन कड़ुवा और चंचल किंवा उदास रहने लगता है।

भैरव साधना

भैरव तंत्र के प्रमुख देवता हैं ये शिव के स्वरूप हैं तथा अमित शक्ति के भण्डार भी हैं। काल भैरव, बाल भैरव (बटुक भैरव) श्मशान भैरव, स्वर्ण भैरव आदि अनेक रूप हैं इनके। सात्विक, राजस और तामस रूप मे इनकी विभिन्न प्रयोजनों से इनकी साधना की जाती है। कलियुग में सर्वाधिक प्रतिष्ठित देव हैं तथा शंकर के अंश होने के कारण शीघ्र प्रसन्न होने वाले भी हैं। माना भैरव शान्त स्वरूप भी हैं, किन्तु उनकी स्वाभाविक रूप राशि भी इतनी उग्र रहती है कि सामान्य साहस जवाब दे जाता है। सिंह कितना भी सौम्य हो, विकराल सर्प कुछ भी न कहे किन्तु उनका सौन्दर्य इतना उत्कट होता है कि भय जनक बन जाता है और जब तक उससे निकटस्थता न हो भय बना ही रहता है।

मेरा अपना विचार है कि "धनदा रति प्रिया यक्षिणी" या 'कर्ण पिशाचिनी' जैसे प्रयोगों की अपेक्षा भैरव का प्रयोग किया जाए तो वह अधिक अच्छा रहता है। यक्षिणी या पिशाचिनी के प्रयोग आखिर अपने गुण और प्रभाव से प्रभावित करते ही हैं। कर्ण पिशाचिनी वालों को मैंने देखा है, उनका बुढ़ापा पहलवान के बुढ़ापे जितना कष्ट कर हो जाता है। वे अपनी व्यथा को खुद ही भोगते रहते हैं। वैसे भी कर्ण पिशाचिनी से भूत और वर्तमान की बता कर लोगो को चमत्कृत करने और पैसा पैदा

करने के सिवा कुछ नहीं किया जाता। यह दूसरी बात है कि कोई अत्यन्त समझदार व्यक्ति उसका दूसरा हितकर और स्थायी प्रयोग कर ले।

भैरव की साधना घर में नहीं करनी चाहिए। यद्यपि घर में साधना करने में कोई तात्त्विक बाधा नहीं है। एकान्त कमरे में की जा सकती है। फिर भी एतियात के तौर पर किसी एकान्त स्थान में करना उचित रहता है। बाकला भैरव का प्रिय भोजन है बाकला उबले हुए चोले को कहते हैं। अगर उनका रूप अधिक भयावह लगे तो उनको नैवेद्य माल्य अर्पित करके।

'शान्ताकारं भुजगशयनं.......'

इस मंत्र से प्रार्थना कर ले। मन में यह विश्वास रखे कि भगवान भैरव भक्त रक्षक हैं, वे सदा अपने भक्तों पर कृपा करते हैं। तंत्र में ऐसे प्रयोग हैं जो बड़े सरल हैं और जिनसे अनेक कष्ट सिद्ध किए जा सकते हैं।

भैरव साधना का शाबर प्रयोग

मंत्र—"काली कंकाली महाकाली के पुत्र कंकाल भैरव हुकम हाजिर रहे मेरा भेजा रक्षा करे लान बांधूं बान चलते के फिरते के औसाण बांधूं दशों सुर बांधूं नौ नाड़ी बहत्तर कोठा बांधूं फूल में भेजूं फूल में जाये कोठे जी पंडे थर-थर कांपे हल हल हले गिर-गिर पड़े उठ उठ भागे बक बक बके मेरा भेजा सवा घड़ी सवा पहर सवा दिन सवा मास सवा पहर सवा दिन सवा मास सवा बरस को बावला न करे तो माता काली की शैय्या पर पग धरे वाचा चूके तो ऊभा सूखे वाचा छोड़ कुवाचा करे धोबी की नाद चमार के कूंडे में पड़े मेरा भेजा बावला न करे तो रुद्र के नेत्र से आंख की ज्वाला कढे सिर की जटा टूट भूमि में गिरे माता पार्वती के चीर पे चोट पड़े बिना हुकुम नहीं मारना हो काली के पुत्र ईश्वरो वाचा सत्यनाम आदेश गुरु को"

विधि—गाय के गोबर से तिकोना चौका (लीप कर) देकर दक्षिण के तरफ मुख करके बैठे। काल रात्रि (वर्ष में तीन काल रात्रियाँ मानी जाती हैं जिन में शिव रात्रि, प्रमुख है) में अथवा जिस दिन सूर्य ग्रहण हो उस रात्रि में यह प्रयोग करना चाहिए। एक ही आसन पर अविचल भाव

से उक्त मंत्र का एक हजार जप करे। पूजा सामग्री में लाल कनेर के फूल, सिन्दूर, लड्डू और लोंग का जोड़ा रखे। चार मुख का दीपक (बड़े दीपक में चारों ओर जलती हुई चार बत्तियों वाला दीपक) जलाये। दीपक में तिल्ली (या सरसों) का तेल जलाया जाय। फूलों का गजरा पास मे रखे। एक हजार जप करने के बाद तिल और चीनी व घी मिलाकर इसी मंत्र से एक सौ आहुति देकर हवन करे।

हवन करते समय या समाप्ति पर भैरव प्रकट हों तो निर्भीक भाव से फूलों की माला उनके गले में पहना दें नैवेद्य अर्पित कर दे। साष्टांग प्रणिपात से उनको प्रसन्न करे फिर जो कुछ भी उससे मांगे वही मिलेगा।

प्रत्युपचार (काट)

अनेक लोगों का यह आग्रह रहा कि दूसरे द्वारा किये गए प्रयोगों के प्रभाव से मुक्त होने की विधि या प्रति प्रयोग भी जानने चाहिए। कई जगह ऐसे लोगों को दारुण कष्ट भोगते हुए भी देखा जो दुष्टों द्वारा शास्त्रीय या साबर प्रयोगों का कुफल भोग रहे थे। मारण तो बड़ी बात है। सम्मोहन वशीकरण जैसे प्रयोग कभी-कभी घातक बन जाते हैं। जहां व्यक्ति अपनी दैहिक लालसाओं और ऐन्द्रिय आसक्तियों से पीड़ित होकर समाज की मान मर्यादा का अपमान करने या अहंकार की तुष्टि के लिए किसी के जीवन को बर्बाद करने अथवा अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए निरीह व्यक्तियों पर इन अभौतिक प्रयोगों का वार करता है—वहाँ ये प्रयोग तो काम करते हैं किन्तु इसका दण्ड उस व्यक्ति को इस जन्म में या उस लोक में भोगना पड़ता है उसकी पात्रता नष्ट होने लगती है। क्या हमने ऐसे व्यक्तियों को नहीं देखा जिनका किसी जमाने में दबदबा था और आज वे अपमान व उपेक्षा के पात्र हो चुके हैं ऐसे प्रयोग सिद्ध करने से

पहने शास्त्र ने साधक की पात्रता के जो लक्षण बताये हैं उनमें धैर्य और क्षमाशील होना भी आवश्यक माना है। यह हमारा अनुभव सिद्ध सत्य है कि साधक के धीर गम्भीर और क्षमाशील रहने से साधित मन्त्र की शक्ति प्रबल होती जाती है तथा सच्चरित्र साधक के जीवन मे पतन, उपेक्षा या निन्दा जैसी स्थितियाँ बन ही नही सकती। सही अर्थों में साधना करने वाला व्यक्ति सदा-सर्वत्र सम्मान का पात्र ही बना रहता है, जो लोग साधना करके भी पतित होते हैं अपमानित और निन्दित होते हैं उनके लक्ष्य कुछ और रहा करते हैं, वे वैषयिक धरातल पर रमने वाले होते हैं तथा लोगों की सरलता का अनुचित लाभ उठाते है।

जो लोग सच्चरित्र, सात्त्विक वृत्ति वाले, आस्थावान् तथा नियमित रूप से अपने इष्ट की उपासना करने वाले होते हैं उन पर सामान्य प्रयोग असर नही किया करते। बलाबल-सापेक्षता-सर्वत्र देखी जाती है कई प्रयोग इतने उग्र होते हैं तथा साधक इतने प्रबल होते हैं कि उनके प्रभाव मे मुक्त होना बहुत कठिन होता है। जनश्रुति के अनुसार—आद्य शंकराचार्य जब कामाख्या पीठ की तरफ गए थे तो उन पर किसी तांत्रिक ने अभिचार प्रयोग कर दिया था बाद में किसी हितैषी ने प्रत्यभिचार करके उनको मुक्त किया था। तथा उसी प्रयोग ने लौटकर अभिचार कर्ता को पीड़ित किया था। शंकराचार्य के शुद्ध सच्चरित्र और नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने के बावजूद अभिचार प्रयोग ने उनके भगंदर कर दिया था स्पष्ट है वह व्यक्ति और उसकी एतद् विषयक साधना बहुत उग्र रही होगी। जैसा हमारा विश्वास और अनुभव है—सिद्ध लोग न अपना प्रभाव जमाने की चेष्टा करते हैं, न किसी को पीड़ित करते हैं, आज खतरा (हर क्षेत्र मे) अध कचरे नीम हकीम लोगों से अधिक है और इनके प्रयोगों से मुक्त रहा या हुआ जा सकता।

जितने प्रयोग हैं—उन सबका प्रतिकार या काट के प्रयोग लिखना संभव नहीं है क्योंकि ऐसी व्यवस्था शास्त्र ने प्रकट और संबद्ध रूप मे नही दी है। यह व्यक्ति की अपनी सूझ-बूझ पर अधिक निर्भर करता है कि वह संभावित प्रयोग का प्रतीकार स्वयं सोचे और करे।

आदमी को अस्वाभाविक स्थितियों का सामना तीन स्तरों पर करना

पड़ता है। पहली स्थिति यह कि उस पर कोई ईर्ष्यालु या कामातुर व्यक्ति कोई प्रयोग कर दे, दूसरी स्थिति तब होती है जब वह अनजाने और दूसरे के अनचाहे किसी परिस्थिति विशेष मे फँस जाता है जैसे छुतहली बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं, तीसरी, स्थिति वह होती है जिसमें व्यक्ति अपने पूर्वकृत दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप कष्ट भोगता है। यह स्थिति बिल्कुल बीमारियो की तरह होती है—नैसर्गिक, आगन्तुक और विसर्पी व्याधियों की तरह ये मानसिक आधियाँ भी हुआ करती है किन्तु हम इनके निदान और चिकित्सा से परिचित नही रहते।

जो लोग आत्म रक्षा के लिए सप्तशती कवच, रामरक्षा भ्रात्र मृत्युंजय मन्त्र का नियमित जप करते हैं उनका शरीर साधारणतया स्वस्थ रहता है। जिनके घर मे प्राण प्रतिष्ठा किया हुआ और पुरश्चरण किया गया महामृत्युंज मंत्र स्थापित रहता है उनके घर में वैद्य की आवश्यकता कम-से-कम पड़ती है। महामृत्युंजय, रामरक्षा शतचण्डी और सुन्दरकाण्ड के प्रयोग मृत्युमुख मे जा रहे व्यक्ति को बचा लेते हैं।

विषमता वहा होती है जहाँ व्यक्ति पर कृत व्याधियों और अभिचार कर्म के कारण पीड़ित होता है। अभिचार कई तरह का होता है—शाबर पद्धति में सुई बाण चलाने की विधि है—इसमें नीबू में सुई गड़ाई जाती है और उसमे गड़े हुए ही छोड़ दिया जाता है ऐसी स्थिति मे जिस तरह वह नीबू सूखता है उसी क्रम से व्यक्ति भी सूखता चला जाता है दूसरी वह विधि होती है जिसमें काले सर्प के मुख मे—अभीष्ट व्यक्ति की कोई वस्तु नियत दिन लाकर—बन्द कर काले धागे से बांध कर जमीन में गड़ा दी जाती है, इस टोटके को छ माह से पहले ही नही निकाला जाय तो व्यक्ति कई तरह की व्याधियों से पीड़ित होकर समाप्त हो जाता है। कुछ लोग श्मशान का कपड़ा, मनुष्य की हड्डी की कील से ही का श्रल जैसी चीजें व्याविधि लाकर आदमी के घर मे डाल देते हैं इसमे घर में कलह, बीमारियाँ, विपत्तियाँ आने लगती हैं। भारत के सभी अंचलों मे, खासकर गाव मे कुछ ऐसे लोग रहा करते हैं जो मारण कर्म मूंठ चलाने में निपुण हुआ करते हैं, उनके प्रयोग से व्यक्ति मर जाया करता है कभी-कभी मरने के बजाय विभिन्न प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है।

इस प्रकार के अभिचार प्रयोगों से बचने के अनेक उपाय हैं। पहले से रक्षित व्यक्ति पर इनका कोई प्रभाव नही पड़ता। किन्तु दुर्भाग्यवश कोई इनकी चपेट मे आ जाय तो उसे शास्त्रीय प्रयोगो में गजेन्द्र मोक्ष का प्रयोग, सम्पुटित शतचडी जैसे प्रयोग करने या कराने चाहिए। प्रत्यंगिरा और नरसिंह कवच का प्रयोग भी परीक्षित है, इनसे भी लाभ मिलता ही है। प्रत्यंगिरा प्रयोग और नरसिंह कवच इसी प्रकरण मे दिये-जा रहे हैं—

नृसिंह कवच

नारद उवाच—इन्द्रादिदेव सर्वेण ईड्येश्वर जगत्पते।
महाविष्णो नृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥
यस्य प्रपठनात् विद्वान् त्रैलोक्य विजयी भवेत्।
ब्रह्मा उवाच—शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन।
कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्॥
स्रष्टाहं जगतां वत्स पठनात् धारणात् यतः।
लक्ष्मीः जगत् त्रयं पाति संहर्ता च महेश्वरः॥
पठनात् धारणात् देवाः बहवश्च दिगीश्वराः।
ब्रह्मामंत्रमयं वक्ष्ये भ्रान्त्यादि विनिवारकम्॥
यस्य प्रसादात् दुर्वासाः त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
पठनात् धारणात् यस्य शास्त्रा च क्रोध भैरवः॥
त्रैलोक्य विजयस्यापि कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिः छन्दस्तु गायत्री नृसिंहो देवता विभुः
क्ष्रौं बीजं मे शिरः पातुचन्द्रवर्णो महामनुः।
ओम् उग्रं वीरं महाविष्णु ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्
नृसिंह भीषणं भद्रं मृत्युमृत्यु नमः म्यहम्।
द्वैत्रिंशदक्षरो मंत्रो मंत्रराजः सुरद्रुमः॥
कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद भगवतेचक्षुरी मम।
नरसिंहाय च ज्वाला मालिने पातु कर्णकम्॥
दीप दंष्ट्राय च तथा अग्निनेत्राय नाभिकाम्।
सर्वरक्षोघ्नाय च तथा सर्वभूत हिताय च॥

सर्वज्वर विनाशाय दह दह पदद्वयम्।
रक्ष रक्ष वर्ममंत्रः स्वाहा पीतू मुखं मम।
नारादि रामचन्द्राय नमः पातु हृदं मम।
क्लीं पायात्पार्श्वयुग्मं चत्वारो मम पदं ततः॥
नारायणाय नाभि च आं ह्रीं क्रों क्षी च हुम फट्
षडक्षरः कटिं पातु ओम् नमो भगवते पदम्॥
वासुदेवाय च पृष्ठं क्लीं कृष्णः क्लीं उरुदाणम्।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु जामुनी च मनुत्तमुः॥
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलोगा। नमः पायात्पदद्वयम।
क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौं च सर्वांग में सदावतु॥
इति ते कथितं वत्स सर्वं मंत्रौघ विग्रहम्।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥
गुरुपूजां विधायार्थे गृहणीयात् कवचं ततः॥

विधि—शुक्ल पक्षी चतुर्दशी के दिन शुभ नक्षत्र रहने पर इस स्त्रोत्र को भोजपत्र पर अष्टगंध या चन्दन और केसर से अनार की कलम से लिख लें। इसे पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजित करके इसके सामने बैठकर इसी स्त्रोत्र के एक सौ आठ पाठ सुना दे। कवच में यह भावना करता रहे कि ये मूर्तिवान् नरसिंह हैं। इसी स्त्रोत्र के प्रत्येक मंत्र का हवन घी से करे। ग्यारह स्त्रोत्रों का हवन करना चाहिए, तर्पण भी कर ले तो ठीक। पाँच सदाचारी गौरवर्ण ब्राह्मणों को भोजन करा कर इस भोजन पत्र को तांबे या सोने या चांदी के तावीज मे रखकर हाथ या गले मे बांधने से किसी भी प्रकार की परकृत व्याधि नही होती। वस्तुतः यह कवच श्री नृसिंह के मंत्र का विस्तृत स्वरूप है। यदि नृसिंह मंत्र के दस हजार जप करके, उस मंत्र को भोजपत्र पर लिखकर कवच की ही तरह प्रयोग किया जाए तो भी यह फल प्राप्त होता है। यही कवच ताम्र पत्र पर लिखाकर पुरश्चरण करा कर घर मे स्थापित कर दिया जाय तो वह घर परकृत व्याधियों एवं अभिचार से मुक्त रहता है।

प्रत्यंगिरा मंत्र प्रयोग

मंत्र—"ओम् ह्री यां कल्पयति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव ह्री ब्रह्मणा अपनिर्णुद्मः प्रत्यक् कर्तारम् ऋच्छतु ह्री ओम्". संकल्प करके विनियोग करे—

"अस्य श्री प्रत्यंगिरा मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टप् छन्दः देवी प्रत्यंगिरा देवता ओम् बीजम् ह्री शक्तिः मम अखिल प्राप्तये जपे विनियोगः।"

न्यास—ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे देवी प्रत्यंगिरादेवतायै नमः हृदये, ओम् बीजाय नमः लिंगे, ह्री शक्तये नमः पादयोः विनियोगाय नमः सर्वांगे ॥

करन्यास—ह्रीं यां कल्पयन्ति नोऽरयः अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्री क्रूरां कृत्यां तर्जनीभ्याम् नमः, ह्री वधूमिव मध्यमाभ्यां नमः ह्री ह्रां ब्रह्मणा अनामिकाभ्या नमः, ह्री अपनिर्णुद्मः कनिष्ठाभ्याम् नमः, ह्रीं प्रत्यक् कर्तारम् ऋच्छतु करतल करपृष्ठाभ्यां नमः।

षडंगन्यास—ह्री या कल्पयन्ति नोऽरयः हृदयाय नमः, ह्री क्रूरां कृत्यां शिरसे स्वाहा ह्री वधूमिव शिखायै वषट्, ह्री ह्रा ब्रह्मणा कवचाय हुम्, ह्री अपनिर्णुद्मः नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्री प्रत्यक् कर्तारम् ऋच्छतु अस्त्राय फट्।

इस मंत्र की प्रत्यंगिरा देवता है जिसकी पंचोपचार से पूजन करके दस हजार मंत्र जपने से पुरश्चरण पूरा हो जाता है। पुरश्चरण करने से वह मंत्र सिद्ध हो जाता है—ऐसा शास्त्रों का कथन है। जिसने पुरश्चरण कर लिया वह यदि एक माला प्रतिदिन जपता है तो शत्रुकृत किसी भी प्रकार के अभिचार से मुक्त होता है तथा नित्य जप करने वाला किसी ऐसी व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति को एक सौ आठ बार मंत्र जप करके अभिमंत्रित जल पिला देता है अथवा दस-दस मंत्रों से दसो दिशाओं में बलि दे देता है, तो वह व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

प्रत्यंगिरा का दूसरा मंत्र

"ह्रीं नमः कृष्णवास से शतसहस्रहिंसिनि सहस्रवदने महाबले अपराजिते

प्रत्यंगिरे परसन्य परकर्म विध्वंसिनि परमंत्रोत्सादिनि सर्वभूतदमने सर्वदेवान् बध बंध सर्वविद्याश्छिधि छिधि क्षोभय क्षोभय परयंत्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृंखलास्त्रोटय त्रोटय ज्वलत् ज्वालाजिह्व करालवदने प्रत्यंगिरे ह्रीं नमः"

यह सवा सौ अक्षरों का माला मंत्र है। इसका पुरश्चरण भी दस हजार जप से हो जाता है। शेष विधान पूर्वलिखित मंत्र की तरह हैं। विनियोगादि इस प्रकार हैं—

"अस्य श्री प्रत्यंगिरा माला मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, देवी प्रत्यंगिरा देवता ओम् बीजम् ह्रीं शक्ति मम परकृताभिचाराविकर्म परिहारार्थं जपे विनियोगः"

ऋष्यादि न्यास पूर्वोक्त प्रकार से है। हृदयादि षडंगन्यास ह्रीं बीज से होंगे। जैसे वोषट ह्रीं हृदयाय नमः ओम् ह्रीं शिरसे स्वाहा ओम् ह्रीं शिखायै वषट्, ओम् ह्रीं कवचाय हुम् ह्रीं नेत्रभयपि वौषट् ओम् ह्रीं अस्त्राय फट्।

करन्यास—ओम् ह्रीं अनुष्ठाभ्याम् नमः ओम् ह्रीम् तर्जनीभ्याम् नम. ओम् ह्रीं मध्यमाभ्याम् नमः, ओम् ह्रीम् अनामिकाभ्याम् नमः। ओम् ह्रीं कनिष्ठिकाभ्याम् नमः ओम् ह्रीं करतल करपृष्ठाभ्याम् नमः।

दोनों प्रयोगों के लिए ध्यान का श्लोक यह रहेगा—

सिंहारूढातिकृष्णा त्रिभुवनभयकृत्रूपमुग्र वहन्ती,
ज्वालावस्त्रा वसाना नववसनयुग नीलमण्याभ कान्तिः। शूलं खड्गं वहन्ती निजकर युगले भक्त रक्षैकदक्षा
सेयं प्रत्यंगिरा संक्षपयतु रिपुभिः निर्मितान्नोभिचारात्।

रक्षाकर सरल मंत्र

'ह्रौं ह्रीं ह्रीं' यह तीन अक्षर वाला मंत्र और "ओम् ह्रीं श्री रची" यह पाँच अक्षर वाला मंत्र बहुत प्रभावशाली है। इनके न्यास या विनियोग नहीं है। अपने इष्टदेव को याद करके इस मत्र के पचास बार बोलने से ही आदमी की रक्षा हो जाती है। ये इस तरह की मात्रा से सिद्ध होने वाले मंत्र उसी व्यक्ति के काम करते हैं जो नियमित रूप से अपने इष्ट की उपासना करके सदाचार से रहते हैं। ऐसा ही मंत्र है—"ओम् ध्रीं ध्री ध्री

क्री क्री फट्" इस मंत्र को पाँच सौ बार नित्य जपने से व्यक्ति सुरक्षित रहता है।

अभिचार से बचने का साबर मंत्र—

'काला चौसठ कलवा चीर मेरा कलवा मृधातीर जहाँ को भेजूं वहाँ को जाए मांस मच्छी को छुअन न जाई अपना मारा आपहि खाँय चलत बाण मारूं उल्ट मूठ मारूं मार-मार कलवा तेरी आस चार चौमुखा दिया न बाली जा मारू वाही की छाती इतना काम मेरा न करे तो तुझे अपनी माँ का दूध पीना हराम।"

प्रत्येक मंगलवार को यह मंत्र इक्कीस बार पढ़ने से सिद्ध होता है। सात मगलवार को करना पड़ता है। यह जप करते समय आग में गुगल की धूप दी जाती है तथा चौराहे या घाट पर चार बत्ती का दीपक, दीपक रखने से पहले एक कूडे में फूल जोड़ा, मिठाई खाकर गुगल की धूप खेते हुए इक्कीस बार मंत्र जपना चाहिए और मध्याह्न या अर्धरात्रि को यह कार्य करके दीपक और मिठाई, फूल आदि को घाट या चौराहे पर रख दिया जाता है। चौराहे पर ये चीजें रखकर आते समय पीछे फिर नही देखा जाता है। सात मंगलवार तक सिद्ध करने के बाद जिस किसी व्यक्ति पर मूठ मारी गई हो उसकी मूठ इसी मंत्र से झाड़ने तथा दीपदान करने से उतारी जा सकती है, जिसने यह सिद्ध कर लिया है उस पर तो कोई प्रभाव होगा ही नही।

जो लोग प्रेत बाधा से पीड़ित होते हैं उनको इस बाधा से मुक्त होने के लिए प्रयोग अलग पुस्तक में दिये जायेंगे। प्रेतबाधा इतनी विस्तृत है, प्रेतों का संसार और उनकी शक्ति व क्रिया कलाप इतने हैं कि वे स्वतंत्र पुस्तक मे आयेंगे। प्रेत बाधा स्वतः प्राप्त हो अथवा किसी दुष्ट व्यक्ति द्वारा भेजे गये प्रेत से पीड़ित हो—इन सबका उपचार उस पुस्तक मे रहेगा, आशा है शीघ्र ही यह पुस्तक आप लोगों को सुलभ हो जायगी।

दूसरे द्वारा किये गए अभिचार प्रयोग से रक्षा करने के लिए (भीष्म पाषाण) यशव, क्राइसोप्रेज, फिरोजा, कार्नेलियन अकीक, संग सुलेमानी की अंगूठी या पैंडेंट में जड़ाकर धारण करने से भी लाभ मिलता है। इनमे यशव और क्राइसोप्रेज् लहसुनिया के उपरत्न है फिरोजा नीलम का अकीक

भी लहसुनिया का ही उपरत्न है ये शाइयो वेरियल ग्रुप के हैं। केतु और राहु तथा शनि व्यक्ति के जन्म समय निर्बल रहकर इस प्रकार की व्याधियों को अवसर देते हैं इनके प्रबल करने से ऐसी व्याधियां असर नही करती।

इन रत्नो—ये मूल्य में अधिक नही हैं—के धारण करने से व्यक्ति नजर (दृष्टि दोष) से और एक सीमा तक प्रेत व्याधि से भी मुक्त रहता है। दृष्टि दोष बहुत तीव्र भावना दोष होता है जितना असर बद्दुआ में होता है, लोगों के शाप में रहता है, सताये जाने की कराह में होता है उतना ही किसी की तीव्र लालसा में भी होता है। यह दोष स्वच्छ सफेद गोर वर्ण पर अधिक लगती काले रंग पर कम यद्यपि कई लोगों की कामना स्वभाव से ही बहुत तीव्र होती है और ऐसे लोग लालसा ग्रस्त होकर जिस भी किसी वस्तु को देखते हैं वह दूषित हो जाया करती है। यदि यह दृष्टि-दोष भोजन पर हुआ तो जब तक वह भोजन बाहर नही निकल जायगा तब तक चैन नही मिलेगा। किन्ही वज्रदृष्टि वालों का दृष्टिदोष किसी भी चीज को नष्ट करने की शक्ति रखता है क्यो कि यह दोष मूल वस्तु को विकृत कर डालता है किन्तु ऐसे लोग बहुत कम होते हैं। कभी-कभी सामान्य व्यक्ति भी जब अत्यन्त आतुर होकर किसी वस्तु को देखता है तो उससे भी वह वस्तु दूषित हो जाती है इसलिए प्रत्येक सुन्दर और सौभाग्यशाली वस्तु को सुरक्षित रहना पड़ता है। हमारे यहां भजन करने के स्थान को, माला को, भजन को गुप्त रखने की व्यवस्था यही सोच कर रखी गई है कि इससे व्यक्ति भावना का दोष से मुक्त रहे। साधना भावना लोक की वस्तु है, इस पर भावना का दोष बहुत जल्द होता है। भजन, भोजन और रति ये गुप्त ही रहने चाहिए।

दृष्टिदोष एक प्रकार का कामना विष रहा करता है—इसे दूर करने के लिए झाड़ने की व्यवस्था और विधि है। झाड़ने के मंत्रों को ग्रहण के समय या होली, दीवाली व शिवरात्रि को जप कर सिद्ध कर लिया जाता है फिर अवसर आने पर इस मंत्र से झाड़ने पर लाभ होता है। नजर दूर करने का शाबर मंत्र है—

"ओम् नमो सत्यनाम आदेश गुरु को ओम् नमो नजर पर पीर न जानी बोले छल सों अमृतवानी कहो नजर कहां से आई यहां की ठौर तोहि

सिर पर डाल दे। पहले शनि को कौवे के घोंसले को निमंत्रण देकर रविवार को ले आवे और अगले शनिवार को आधी रात मे जला ले।

इसके विपरीत जिन दो मित्रों में द्वेष हो या करा दिया गया हो उन पर आकर्षण या सम्मोहन का प्रयोग करने से लाभ होता है। इस प्रकार का विद्वेषण अगर किसी और-के द्वारा किये गये प्रयोग के कारण है तो सम्मोहन या आकर्षण का प्रयोग अधिक मात्रा में करना पड़ेगा अथवा कोई उग्र प्रयोग करना होगा।

इस व्यवस्था के अतिरिक्त एक पद्धति हमारे भारत में और रही थी वह थी हवन की। जंगल के एकान्त में रहने वाले ऋषि यज्ञप्राण थे। इसमे सन्देह नहीं कि यज्ञ एक वातावरण का निर्माण करता है, उसकी धूम जितनी दूर मे फैलती है उतनी दूर मे वह अपना प्रभाव प्रकट करती है हमारे श्वास के जरिये होमित पदार्थ के कण हमारे शरीर में जाते हैं और वे अपना सूक्ष्म प्रभाव हमारे शरीर और विचारों पर डालते हैं। किसी भी अनुष्ठान की पूर्ति तभी होती है जब दशांश हवन कर लिया जाता है। यहां उन वस्तुओं की सूची प्रस्तुत है जिनके हवन करने से विविध प्रभाव और फल प्राप्त होते हैं। इस कार्य से संबधित मंत्र के साथ यदि हम उन पदार्थों का हवन करें तो हमें अभीष्ट फल प्राप्त होगा ही।

शान्ति पुष्टि के कार्यों में गूगल, गुड, शक्कर तिल, घी का हवन किया जाता है। बुद्धि के कुन्दपने को दूर करने के लिए मालती का, सम्मोहन के लिए कनेर, चम्पा, गुलाब का हवन किया जाता है, दुःखनाश के लिए गूगल, उपद्रव शान्त करने के लिए शहद, शत्रु विनाश के लिए बकरे का मास, दुष्टों के नाश के लिए नमक और राई, भूत प्रेतादि के नाश के लिए कैर का हवन किया जाता है।

धन प्राप्ति के लिए बिल्वपत्र का फल और खीर, राज्य मे पद या लाभ प्राप्त करने के निमित्त लाजा अनार, केला और दूध का हवन किया जाता है। हवन मे चीनी का प्रयोग सुखप्रद, कमल पुष्प-सम्पत्ति प्रद, नारियल-धन धान्य की वृद्धि, किशमिश सर्व सिद्धि, तिल, सब तरह के कामों में सफलता, घी अभीष्ट कार्य में सफलता और गन्ना-सुख वृद्धि करता है।

शत्रु की तरफ से या शत्रुतावश कोई व्यक्ति हानि पहुचाने की चेष्टा करे तो स्तंभनकारज प्रयोग करने चाहिए शत्रुओं की वाणी और बुद्धि को जड़, करने में लांगूलास्त्र रिपुंजय स्त्रोत्र, पीतांवरा और रामरक्षा का प्रयोग अचूक है। यदि दुर्भाग्यवश रंजिश के कारण कारागार में डाल दिया गया है तो संस्कृत जानने वाला व्यक्ति गजेन्द्रमोक्ष के पाठ करे और हिन्दी जानने वाला संकट मोचन के पाठ करने लगे तो व्यक्ति से मुक्त हो जाता है।

'ओम् हुम् फट्' यह छोटा-सा मंत्र बहुत जल्द सिद्ध हो जाता है। इसके एक सौ आठ जप करने के बाद राज्याधिकारी या किसी व्यक्ति की ओर देखने से वह व्यक्ति उसके अनुकूल हो जाता है। जिन लोगों को एक ही जगह रहने की आदत पड़ गई है और उस वातावरण में रहने से व्यक्ति का स्वयं का और उसके परिवारिकों का अहित होता हो तो उस स्थान पर उच्चाटन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

सन्तान प्राप्ति के उपाय

आज भारत में जनसंख्या का विस्तार एक दुरन्त समस्या है चिकित्सा विज्ञान जन संख्या नियन्त्रण के अनेकानेक साधन ढूढ रहा है किन्तु इसके साथ ही यह सत्य है कि अनेक लोग ऐसे हैं, जो सन्तान का मुख देखने के लिए आतुर है। मनु महाराज ने पुत्रैषणा को जीवन की मौलिक इच्छा माना है क्योंकि पुत्र के रूप मे व्यक्ति स्वयं नया होता है, पुत्र से उसे बहुत अपेक्षायें रहती हैं, अपनी सम्पत्ति का ही उपभोक्ता नहो, कुल परम्परा के सूत्र के रूप मे भी पुत्र सन्तान की कामना करता है। विदेशो की बात और है—भारत में पुत्री को पराया धन माना जाता है और हम पुनर्जन्म मे विश्वास रखते हैं इसलिए मृतक का उत्तर कर्म करने, पिण्डदान करने

और श्राद्ध आदि करने के लिए पुत्र का होना हमारा सामाजिक, पारंपरिक धार्मिक और भावनात्मक आवश्यकता रहती है। जनेऊ के रूप में हम तीन ऋणों में से एक-पितृऋण को याद रखते हैं वह ऋणमुक्ति पुत्र से ही संभव है तथा पुं नामक नरक से त्राण पाने के लिए भी पुत्र की आवश्यकता होती है ये सारी बातें एक संस्कार के रूप मे हमें सिखाई जाती हैं और हम भावनात्मक रूप से पुत्र प्राप्ति के लिए उत्सुक हो उठते हैं।

पुराणों की मान्यता है कि पुत्र प्राप्ति व्यक्ति का नैसर्गिक अधिकार है किन्तु यदि कोई इससे वंचित रहता है तो इसके पीछे पाप या शाप के सिवा कोई कारण नही हो सकता। ज्योतिष शास्त्र मे पुत्र प्राप्ति के प्रतिबंधक योगों का वर्णन करते हुए अलग-अलग स्थितियों की सूचना देने के लिए अलग-अलग ग्रह, योग बतलाया है, राजा दिलीप पर कामधेनु का शाप था इसलिए वशिष्ठ ने उसे गौ सेवा करके शाप-मुक्त होने की बात कही थी और राजा दिलीप ने निष्ठा पूर्वक सेवा करके यशस्वी पुत्र प्राप्त किया था।

जिस प्रकार हमारी दण्ड संहिता मे अनेक प्रकार के पापो (अपराधों) के विविध प्रकार के दण्ड वर्णित हैं उसी प्रकार हमारे जीवन मे प्राप्त अनेक कष्टों के पीछे भी किसी न किसी प्रकार का कोई अपकर्म रहा करता है। असल में हमारे जन्म के कारण स्वरूप पूर्वकृत कर्म हैं जिनका भोग करना हमारी विवशता है, मनुष्य योनि की सबसे बड़ी विशेषता यह कि इसमें भोग के साथ नये कर्म करने की स्वतंत्रता भी रहती है।

सन्तान सुख से वंचित रहने के अनेक प्रकार है जिन्हे तकनीकी भाषा में पृथक्-पृथक् नाम दिये गये हैं वे स्थितियां इस तरह हैं—सन्तान का बिल्कुल न होना गर्भ स्राव हो जाना, एक निश्चित उम्र तक आते-आते बालक का मर जाना, एक बार सन्तान होने के बाद बन्द हो जाना लड़की ही लड़की होना।

किसी भी मत्र या स्त्रोत्र के पाठ का फल बताते समय पुत्र लाभ जैसे फल का उल्लेख यद्यपि यह सिद्ध करता है कि इस प्रकार के जपों वा पाठों से व्यक्ति के पापो का क्षय होता है इसलिए भौतिक सुखो के प्राप्त होने मे

कोई बाधा नही रहती। फिर भी पुत्र प्राप्ति के निमित्त विशेष अनुष्ठान किये जाने की व्यवस्था पुराणो और तन्त्र ग्रंथों मे मिलती है। ऊपर पुत्र या सन्तान सुख से वंचित होने की जो पांच क्रमिक अवस्थायें दी गई हैं उनके उपचार भी शास्त्रों मे पृथक्शः दिये गये हैं। वंध्यापन इनमे सबसे बड़ा है और यह स्त्री अथवा पुरुष मे से किसी एक के या दोनों के ही हो सकता है। इसकी परीक्षा के लिए जौ गेहूं के दानों को मिट्टी में दबा दिया जाय और स्त्री तथा पुरुष दोनों प्रातःकाल उठ कर उस पर पेशाब करें, दिन मे भी करें एक सप्ताह मे जिसके दाने अंकुरित हो जाय उसमें सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता है और जिसके न उगें उसमें नही है। आजकल इस प्रकार की परीक्षा करने के रासायनिक तरीके भी हैं। अच्छा रहे इन दानों को अभिमंत्रित कर लिया जाय।

औषधि सेवन के साथ-साथ आध्यात्मिक बल प्राप्त करने का प्रयास भी करना चाहिए। माना औषधि का अपना बल और प्रभाव है किन्तु अनुभव बतलाता है कि अनुष्ठान जैसे उपाय दवा से अधिक गुण करते हैं। अनुष्ठान का ऐसा बल है कि जिन लोगो को डाक्टरो ने जवाब दे दिया उनको पूजा ने बचा लिया। जय प्रकाश नारायण के लिए की गई प्रार्थनाओं ने दवाओ को असरदार बनाया ही है।

सन्तान प्राप्ति के उपायों में—सन्तान गोपाल का प्रयोग, पुत्रेष्टि यज्ञ, आम्रयक्षिणी का प्रयोग, शिवार्चन हरिवंश कथा आदि के अलावा तीर्थयात्रा किसी गरीब ब्राह्मण की पुत्री या पुत्र का विवाह, बैल का दान, झूले पर रखे सोने के बालक का दान, बछड़े सहित सोने की गाय का दान आदि हैं।

जो लोग किसी जन्म में बालकों का वध किए होते हैं उनके सन्तान या तो गर्भ मे नष्ट हो जाती है या होने के बाद मर जाती है। इनके लिए शतचण्डी का प्रयोग, भगवान् शंकर का अनुष्ठान, हरिवंश पुराण की कथा सुनना शिव के पुत्र प्रद रूप की कल्पना करके पुरश्चरण करना या कराना, तथा जप के दशांश हवन मे दूब घी मे डुबो कर आहुति देना तथा करने वाले ब्राह्मण को ग्यारह स्वर्ण मुद्रा, ग्यारह पशुओं का दान और एक सौ आठ ब्राह्मणों को यथारुचि भोजन करा कर उनसे आशीर्वाद लेना। ये

उपाय अधिक कारगर रहते हैं।

हरिवंश पुराण की कथा सुनने का अधिक महत्व बतलाया गया है। यो तो हरिवश की कथा सुनाने वाले इन अगों से परिचित होते है किन्तु जो व्यक्ति स्वयं हरिवश वाचन करना चाहते हैं वे संकल्प करके गणपति पूजन, मातृका पूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याह वाचन, करके स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ जाय तथा अपनी पत्नी एवं अन्य श्रोताओं को उत्तर की तरफ मुंह करके बिठला दे अगर किसी अन्य से सुनना हो तो श्रावक को उत्तराभिमुख बिठला कर स्वय पूर्वमुख होकर बैठ जायं।

जितने दिन कथा का आयोजन हो तो उतने दिन तक दोनों (सन्तानार्थी पति पत्नी)

देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरणं गतः

इस मंत्र का जप करते हुए कथा का श्रवण करें तथा इस मंत्र का निरन्तर जप करते रहें। तेल, पान, खाट पर शयन न करें, मन-वचन-कर्म से पवित्र रहते हुए ब्रह्मचर्य धारण करें और हल्के मधुर स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें।

कथा समाप्ति के दिन कथावाचक को कपिला गाय बछड़े सहित, सींगों पर सोना (यथा शक्ति) मंढवा कर, खुर चांदी से मढवा कर, पीठ पर तांबे का पत्त रख कर कांसी पीतल के दूध दुहने के बर्तन के साथ दान कर दें और चौबीस जोड़ों को, खीर व अन्य पदार्थों के भोजन से तृप्त करावें। व्यक्ति स्वयं करे तो ये दान सत्पात्र ब्राह्मण को दे दे।

दूसरा प्रयोग सन्तान गोपाल का है। इस प्रयोग को कई लोगों ने किया है और लाभ उठाया है। हरिवंश पुराण का प्रयोग भी सर्व विदित है पर जिनके पूर्व जन्मार्जित पाप गुरुतर हो उनको एकाधिक प्रयोग करने पर सफलता मिलती है या एक ही प्रयोग को कई बार करने से फल प्राप्त होता है।

देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरणं गतः

यह अनुष्टप् छन्द में मंत्र है। शुभ दिन देख कर तांबे, चांदी या सोने

के पत्ते पर सन्तान गोपाल का मंत्र खुदवा कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करे उसके सामने बैठ कर सवा लाख जप का पुरश्चरण करे। मंत्र में चौको लाइनें खींच कर उनके भीतर आठ पत्तों वाले कमल की आकृति बना क उस कमल के बीच में एक षट्कोण बनवाले और षट्कोण के मध्य में ऊप लिखा मंत्र लिखवा ले, इसके पूजन का विधान आगे दे दिया जायगा प्राण प्रतिष्ठा की सामान्य पद्धति इस पुस्तक में या इसी लेखक की अन्य पुस्तक में मिल जायगी।

संकल्प बोल कर विनियोग करे—

'अस्य श्री सन्तान गोपाल मंत्रस्य नारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कृष्णः देवता मम पुत्र प्राप्ति कामनया जपे विनियोगः

न्यास—नारद ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टप् छन्दसे नमः मुखे, कृष्ण देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे ऋष्यादि न्यास के बाद मंत्र का न्यास करना होता है।

न्यास—देवकी सुत हृदयाय नमः, गोविन्द शिरसे स्वाहा, वासुदेव शिखायै वषट्, जगत्पते कवचाय हुम, देहि मे तनयं कृष्ण नेत्रत्रयाय वौषट् त्वामहं शरणं गतः अस्त्राय फट्।

करन्यास—देवकीसुत हृदयाय नमः गोविन्द तर्जनीभ्याम् नमः वासुदेव मध्यमाभ्याम् नमः, जगत्पते अनामिकाभ्याम् नमः देहि, मे तनयं कृष्ण कनिष्ठाभ्यां नमः त्वामह शरण गतः करतल कर पृष्ठाभ्याम् नमः।

करन्यास-मंत्र महोदधि—मे अंगुष्ठ को छोड़ दिया है और उसके स्थान पर हृदय को ले लिया है।

न्यास के बाद पूर्व दिशा से आरंभ करके विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और मध्य मे अनुग्रहा नामक नौ पीठ शक्तियों का पूजन करे।

तदनन्तर मंत्र को किसी पात्र मे रखकर पंचामृत स्नान कराकर शुद्ध पानी से धोकर पट्टे पर लगाये मंडल मे स्थापित कर यत्र के आवरण की पूजा करनी चाहिए। पूजा से पहले पूजा करने की अनुज्ञा प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है। यंत्र के षट्कोणो मे ऊर्ध्वशीर्ष त्रिभुज के नीचे दाहिने कोने में 'देवकीसुत' लिखे गये की सीध मे देवकीसुत, गोविन्द वासुदेव,

जगत्पते, देहि मे तनयं कृष्ण, त्वामहं शरणं गतः इन शब्दों को हृदयादि न्यास की तरह बोलते हुए भगवान् के छः अंगों की स्थापना कर लेनी पड़ती है। षट्कोण के ऊपर और नीचे वाले कोण में अधः शीर्ष मे देहि में तनयं कृष्ण नेत्रत्रयाय वौषट् इससे स्थापित करे तथा त्वामह् शरणं गतः अस्त्राय फट् से ऊपर वाले कोण में स्थापना करनी पड़ती है। प्रत्येक स्थापना के पश्चात् श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः जोड़ना पड़ता है और इसके साथ ही निर्दिष्ट कोण में गंधाक्षतपुष्प अर्पित कर दिये जाते हैं जैसे देवकीसुप हृदयाय नमः हृदय श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

प्रथम आवरण की पूजा करके आठ पत्तों वाले कमल में पूर्वादि क्रम से क्लाक वाइज् विभिन्न परिकर की पूजा की जाती है। पूजक के सामने वाले कोण से क्रमशः कालिन्दी, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, चारुहासिनी, रोहिणी, जांबवती, रुक्मिणी, सत्यभामा का पूजन करे। पूजन में गधाक्षत पुष्प चढ़ाने होते हैं और नमः कहने के बाद श्री पादुकां पूज्यामि तर्पयामि नमः बोलना पड़ता है जैसे कालिन्द्य नमः कालिन्दी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। कृष्ण की आठ पटरानियों का पूजन इन कोणों के भीतर करके इन्हीं कोणो मे इन पत्तों के भीतरी अग्रभाग मे आठ दिग्गजों का पूजन किया जाता है जिनका क्रम इस प्रकार है ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक। इनका पूजन भी उसी विधि से होता है।

तीसरे आवरण के बाद चौथे और पांचवे आवरण का पूजन चतुष्कोण के बाहर उसी पूर्वादि क्रम से करनी चाहिए। इनमें पहले इन्द्र आदि लोकपालो की फिर उनके प्रतीक आयुधों की पूजन करनी होती है। इसके बाद कृष्ण की षोडशोपचार से पूजा कर लेते हैं। यह सब करके एक लाख जप का पुरश्चरण करना होता है। पुरश्चरण मे बराबर संख्या के जप प्रतिदिन करने चाहिए ऐसा नहीं कि आज दस माला कल बीस माला परसों पन्द्रह माला।

पुरश्चरण के बाद हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण भोजनादि सामान्य पद्धति से कर देने होते हैं।

पुत्र प्राप्ति के लिए स्कन्द पुराण में पुत्र प्रदाभिलाषाष्टक बताया गया

है । इसमें मूलतः आठ श्लोक ही हैं शेष श्लोक तो प्रासगिक एवं माहात्म्य का सूचक हैं तो भी इस सारे स्रोत का पाठ करना अधिक समीचीन रहता है । इसका दूसरा नाम विश्वेश्वर स्रोत भी है। इसमें भगवान शंकर की स्तुति है जिसे किसी देवालय मे स्थित 'शिवलिंग को सुनाना पड़ता है या प्राण-प्रतिष्ठा किए शिवलिंग को घर पर ही एकान्त कमरे में सुनाया जाता है।

स्मरण रहे स्रोत पाठ थोड़ी देर से असर दिखाते हैं तथा इनका प्रयोग वर्ष भर किया जाता है । सूर्य के बारहों राशियों में परिभ्रमण करने तक करते रहने से पूर्ण फल मिलता है । आज के युग में स्रोत का एक बार पाठ करना पर्याप्त नहीं रहता इसलिए पांच या ग्यारह पाठ करने पर निश्चय से फलीभूत होता है—ऐसा मेरा विश्वास है—सुविधा के लिए विश्वेश्वर स्रोत दिया जा रहा है ।

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्य नेह नानास्ति किंचित् एको रुद्रो न द्वितीयोवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥

एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शंभो,
नाना रूपेष्वेकरूपो प्यरूपः ॥
यद्वत्तपत्यकं एकोप्यनेकः,
तस्मान्नान्यं त्वा विनेशं प्रपद्ये ॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकाया च रौप्यम्,
वारां पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ॥
यद्वत्तद्वद् विष्वगेव प्रपंचः,
यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ,
तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ॥
पुष्पे गंधो दुग्धमध्ये च सर्पिः,
यद्वत् शभो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥
शब्दं गृह्णास्य श्रवास्त्व हि जिघ्रे:
'त्य घ्राणेस्त्व व्यंघ्रिराया सिदूरात् ।

व्यक्षः पञ्चस्त्वं रसज्ञोप्यजिह्वः
कस्त्वां सम्यग्वेत्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥
नो वेदस्त्वामीश साक्षात् हि वेदः
नो वा विष्णुः नो विधाता खिलस्य ॥
नो योगन्द्राः नेन्द्रमुख्याश्च देवाः,
भक्तो वेद त्वामतस्त्वा प्रपद्ये ॥
नो ते गोत्रं नापि जन्मापि नाख्या,
नो वा रूपं नैव शीलं न देहः ॥
एवं भूतोपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः
सर्वान् कामान् पूरये स्तद् भजे त्वाम् ॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे,
त्वं गौरीशः त्वं च नग्नोतिशान्तः ॥
त्वं वै वृद्ध त्वं युवा त्वं च बालः,
तत्किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोस्मि ॥

—×—

स्तुत्वेति भूमौ निपपात विप्रः स दडवद् यावदतीव हृष्ट, तावत्स बालो खिल वृद्ध वृद्धः प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती
प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्वः सर्व प्रदो भवान्
याचा प्रतिनियुक्ते मां किमीशो दैन्य कारिणीम् ॥
इति श्रुत्वा वचतस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह ।
शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वा ब्रवीत् शिशुः ॥
बाल उवाच-त्वयां शुचे शुचिष्मत्या योभिलाषः कृतो हृदि
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्य सशयः ॥
तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते ।
ख्यातो गृहपति नम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः ॥
अभिलाषाष्टक पुण्यं स्तोत्रमेतत् त्वयेरितम् ।
अब्दं त्रिकाल पठनात्कामद शिव सन्निधौ ॥

एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्र पौत्र धनप्रदम् ।
सर्वशान्तिकरं वापि सर्वापत्परिणाशनम् ॥
स्वर्गाप वर्गः सम्पत्तिकारकं नात्र संशयः ।
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥
वर्षं जपन्निदं स्त्रोत्रम् अपुत्र पुत्रवान्भवेत् ॥
वैशाखे कार्तिके माघे विशेषा नियमैर्युतः ॥
यः पठेत्स्नान समये लभते सकलं फलम् ।
कार्तिकस्य तु मासस्य प्रसादादहमव्ययः ॥
तव पुत्रत्वमेष्यामि यस्त्वन्यस्तत्पठिष्यति ।
अभिलाषाष्टक मिदं न देयं यस्यकस्यचित् ॥

जैसा कि इसके फल मे कहा गया है—वैशाख, कार्तिक और माघ मास में इस पुत्रप्रद स्रोत का विशेष अनुष्ठान किया जाता है ।

पुत्र प्रद आम्रयक्षिणी का प्रयोग

आम के वृक्ष पर चढ़कर उसके स्कंध या शाखा पर बैठकर एकाग्र मन से निम्नलिखित मंत्र की ग्यारह या इक्कीस माला प्रतिदिन के क्रम से इकतीस दिन करे । ज्यादा अच्छा रहे सवा लाख जप का एक पुरश्चरण कर ले । आम्र वृक्ष में आम्रयक्षिणी का पूजन पंचोपचार से करके उस पर बैठकर जप करने की आज्ञा ले ले या डाल पर बैठ कर पूजन कर लें । मंत्र इस प्रकार है—

"ओम् ह्रां ह्रीं ह्रूं पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा"

पुत्रप्रद यंत्र

एक सोलह खाने वाला चौकोर यंत्र बनाकर उसमें उत्तर दक्षिण क्रम से ४०-४२-४-५, दूसरी पंक्ति में १-३-४८-४३ तीसरी पंक्ति मे ४६-४७-

५४ और चौथी पंक्ति मे २-७-४०-४४ लिखने हैं। इस चौखाने के बाहर की तरफ एक ओर 'शंकरमातु, शंकर पितु' दूसरी तरफ 'शंकर राखे चारों दीप,' 'पायी के जारू दीप,' तीसरी तरफ और चौथी तरफ करे वरन लक्ष्मी पति' लिख दे।

इस यंत्र को किसी अच्छे वार, तिथि एवं नक्षत्र मे पंचाग मे सर्वार्थ सिद्धि और अमृत सिद्धि योग दिये रहते है उनमे किसी योग में बैठकर भोज पत्र पर गौ रोचन से लिखकर गूगल की धूप देकर चांदी या सोने के ताबीज मे मंढाकर गले में बाध दे। यह ताबीज रजस्वला होने के समय न बांधे। अच्छा रहे एक शुभ मुहूर्त में इस यंत्र का पुरश्चरण प्रारंभ करके अगले शुभ मुहूर्त मे उसे सम्पूर्ण कर दे फिर यह सिद्ध हो जाने के बाद एक यंत्र को (अन्तिम दिन) सिद्ध करके उसे प्रयोग करने के लिए दे दे।

यंत्रों के पुनश्चरण करने की साधारण विधि यह है कि आम के पट्टे पर कुकुम विछाकर अनार की कलम से लिखता जाय और मिटाता जाय।

पुत्र प्राप्ति के लिए एकान्ती देवी का अनुष्ठान अगहन अथवा ज्येष्ठ के माह की पूर्णिमा के दिन एकान्त घर में गाय का गोबर का चौका लगाकर उसमें षट्कोण मण्डल बनाकर (यह षट्कोण जौ के आटे से या चावल से बनाया जा सकता है) उसके मध्य मे एक नया तांबे या मिट्टी का घड़ा लाकर उसमे स्वच्छ पानी भरकर अघ अक्षत; नवरत्न और सोने की पतली (यथा शक्ति) अंगूठी डाल कर फल सहित पेड़ की डाली रखकर गंध, पुष्प, धूप, दीप और प्रसाद से एकान्ती देवी का पूजन करे। शहद, दूध और उड़द आपत करे।

दही के (या दही और चावल के) पिण्ड से षट्कोण के भिन्न-भिन्न कोणों मे वाराही, चान्द्री, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी इन देवियों का पूजन कर और बीच मे (षट्कोण के मध्य मे) एकान्ती देवी का पूजन करे। दही के सात पिण्ड बनाकर एक पिण्ड अलग रख ले और शेष छ पिण्डों को षट्कोणों मे स्थापित विभिन्न देवी के स्वरूपो के अर्पित कर दे। स्वयं एकान्ती देवी के नैवेद्य अलग अर्पित करे। पूजन समाप्त करके एक बचा हुआ दधि पिण्ड स्वयं खा ले तथा कन्या और वटुक (छोटी उम्र के बालक) को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देकर विदा कर दे और

स्वयं उस मंडल व सामग्री सहित कलश के जल को नदी में प्रवाहित कर दे, कलश व रत्न सुवर्ण मुद्रिका किसी सत्पात्र ब्राह्मण को दान कर दे। यह करके वापस घर की तरफ आते समय शुभ शकुन हो तो उत्तम और अशुभ दृष्टान्त हो तो इसी प्रयोग को फिर दुहरावे। यह प्रति वर्ष करे। जब तक सन्तान न हो प्रतिवर्ष अगहन और ज्येष्ठ मास में करता रहे। एकान्ती देवी के सामने ओम् नमः परब्रह्म परमात्मनेगृहे गर्भ जीवितान् सुतान् कुरु कुरु स्वाहा' खाली स्थान में यदि व्यक्ति स्वयं कर रहा है तो 'मम' बोलना होगा, किसी दूसरे के निमित्त कर रहा है तो उस व्यक्ति के नाम के आगे 'स्य' लगाकर बोलना होगा। इस मंत्र के दस हजार जप करने चाहिए। यह मंत्र मृतवत्सा जिनके गर्भस्राव या बालक की गर्भ में ही मृत्यु हो जाती है उनके लिए है पर जिनको बालक नहीं होते उनको भी इस प्रयोग से सफलता मिलती है।

जिनके एक बार सन्तान होने के बाद फिर सन्तान नहीं होती उनको काकवंध्या कहते हैं ऐसी स्त्रियां विष्णुक्रान्ता को जड़ सहित लाकर भैंस के दूध में पीसकर भैंस के घी में सात दिन तक सेवन करे। रजस्वला हो उस दिन से यह प्रयोग प्रारंभ करे, रजस्वला से निवृत्त होकर भी सात दिन तक ले सकते हैं। *विष्णुक्रान्ता की जड़ पीसते समय 'ओम नमः शक्ति रुपाय—* गृहे पुत्र कुरु कुरु स्वाहा इस मंत्र के एक सौ आठ जप करने चाहिए। खाली स्थान पर अभीष्ट व्यक्ति का नाम ग्रहण करना होता है।

ज्योतिष के अनुसार सन्तान कारक शक्ति शुक्र और मंगल में होती है। इनको रेतस् कहा जाता है। स्त्रियों के रजस्वला होने में चन्द्र मंगल का अहम् प्रभाव होता है वास्तव में स्त्री को हीट में लाना मंगल का काम है इसलिए इन दोनों का परस्पर दृष्टि या स्थिति का संबंध होने पर या इन दोनों की पांचवे स्थान पर दृष्टि या स्थिति का संबंध बनने पर ही सन्तान लाभ होता है किसी व्यक्ति की कुण्डली में इन दोनों का किसी प्रकार का संबंध न होना सन्तान सुख से वंचित होने का प्रबल सूचक है।

होने को दूसरे ग्रह भी बाधक बना करते हैं किन्तु इन दोनों को साध लेने पर सन्तान प्राप्ति होनी ही चाहिए। शुक्र के लिए हीरा और मंगल के लिए मूंगा उपयुक्त रत्न रहा करता है यदि व्यक्ति इन रत्नों की भस्म

(विशेषयता पुरुष हीरे की और स्त्रियां मूंगे की भस्म) सेवन करें तो असरदार परिणाम सामने आते हैं। इन रत्नों को धारण करने से भी लाभ होता है। मंगल और शुक्र के मंत्रों का जप करना भी हितकर रहता है।

इसके लिए योग्य वैद्य के परामर्श पर औषधि प्रयोग भी होता है किन्तु साधना का अपना प्रभाव होता है अगर दोनों प्रयोग साथ चलें तो ठीक रहे।

विवाह कारक प्रयोग

अनेक लोग अपने स्वयं के या अपने पुत्र पुत्रियों के विवाह को लेकर परेशान हो जाते हैं, अनेक प्रयत्न करने के बाद भी विवाह का योग नहीं बनता है। लड़की के विवाह को लेकर तो और भी समस्या आती है, हजारों रुपये वर ढूंढने में खर्च हो जाते हैं। मुझे भी ऐसे अनेक प्रसंग देखने को मिले हैं जहां सैकड़ों लोग देखने आ जाते हैं किन्तु बात बनते-बनते रुक जाती है। ऐसी परेशानियों में मैंने भी अनेक प्रकार के प्रयोगों को करके देखा है और इन प्रयोगों को प्रायः सफल होते देखा है किन्तु जहां तक तुलसीकृत रामायण का प्रश्न है वे तो विवाहार्थिनी कन्या द्वारा करने पर भी हो जाते हैं किन्तु दूसरे प्रयोगों में व्यक्ति को सत्पात्रता अर्जित करनी पड़ती है। हां, यदि कोई दुर्गापाठी या अन्य प्रकार की देवी उपासना करने वाला व्यक्ति इनको करके किसी पीड़ित व्यक्ति को दे देगा तो काम करेंगे ही। वैसे ये प्रयोग ऐसे हैं कि इनमे बहुत कम संख्या मे करने से ही पुरश्चरण हो जाता है।

यदि किसी लड़की के विवाह मे दिक्कत आ रही हो तो उसे तुलसीकृत रामायण के सुन्दर काण्ड के एक पाठ प्रतिदिन के क्रम से इक्कीस दिन करना चाहिए। इस प्रयोग में संकल्प विनियोग नहीं किये जाते। भगवान् महावीर का चित्र, अधिक अच्छा रहे जब हनुमान् ने सीता जी को रामचन्द्रजी की मुद्रिका दी थी वह चित्र लेकर उत्तर को तरफ मुख करके बैठ जाय। पहले श्रीराम को प्रणाम करे फिर हनुमान् जी को प्रणाम कर अपना मनोरथ सुना दे और उनसे आज्ञा लेकर पाठ प्रारंभ कर दे।

हमारे यहां के सामान्य शिष्टाचार और परम्परा के अनुसार हनुमान् के आगे धूप, दीप, अगरबत्ती, प्रसाद, (चन्दन) पुष्प अर्पित कर दे। पाठ करने के बाद हाथ जोड़कर क्षमा याचना करता हुआ कहे—"हे देव! इस पाठ में मेरे से जिस भी किसी तरह की गलती हुई हो उसे क्षमा करिये। मैं अज्ञ हूं, साधनहीन हूं आवाहन-विसर्जन और पूजा करने की विधि नहीं जानता। विधि विहीन, उपकरण हीन और श्रद्धा हीन भी जो कुछ मैंने किया है उसे स्वीकार करें"

संपुट की चौपाई है—

"तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह साज संवारि के,
माडवी श्रुतकीरति उरमिला कुंवरि लाइ हकारि के"

कहने की आवश्यकता नही कि संपुट का अर्थ आगे पीछे से होता है अर्थात् सुन्दर काण्ड का दोहा या चौपाई (प्रत्येक) के पहले और बाद मे इस चौपाई को पढ़ना पड़ता है।

तुलसी रामायण का अर्थ हम कर सकते हैं इसलिए लय से, श्रद्धा-पूर्वक अर्थ ग्रहण करते हुए पाठ करें तो भगवान जल्दी प्रसन्न होते हैं। इन प्रयोगों में श्रद्धा और भावना ही प्रमुख तत्त्व होते हैं।

जो लोग सुन्दर काण्ड का प्रयोग नही कर सकते वे अयोध्या काण्ड का पारायण कर सकते है।

जिन युवाओं का (या युवतियो का) विवाह नही हो रहा वे संस्कृत पढ़ना जानते हों तो बाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड का ७ सर्ग प्रति-दिन के क्रम से ६८ दिन का प्रयोग करें। संपुट इनमे से किसी भी श्लोक का दिया जा सकता है—

"स देवि नित्यं परितप्यमानः त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः
दृढ़व्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः"

अथवा—'काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने,
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः।'

जो लोग दुर्गासप्तशती का प्रयोग करना जानते हैं वे

"एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः,
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णि. भविता मनुः।"

इसका सम्पुट लगाकर तीनों चरित्रों—तेरह अध्यायों—का पाठ करने से विवाह योग बनता है। इस सम्पुट मंत्र को बोलने के बाद प्रत्येक बार दीपक को नमस्कार करने से शीघ्र सफलता मिलती है। दुर्गा सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मंत्र के समान माना जाता है इसलिए केवल उपरिलिखित मंत्र का पुरश्चरण करने से भी कार्य सिद्धि हो जाती है।

"ओम् ह्रीं नमः"

इस मंत्र का विनियोग न्यास आदि नहीं है, इसलिए अपने इष्ट देव का स्मरण करके लाल आसन पर बैठकर लाल चन्दन की माला से इक्यावन माला प्रतिदिन रात में एकान्त स्थान में बैठकर जप करें। संभव हो तो दिन में भी लाल ही कपड़े पहनें। यह प्रयोग एक सप्ताह ही किया जाता है और इतने ही समय में फलीभूत हो जाता है। कदाचित् सफलता न मिले तो यही जानना चाहिए कि मात्रा कम है। शुक्रवार या अच्छे मुहूर्त में यह प्रयोग आरम्भ करना चाहिए। यह मंत्र स्त्री पुरुष दोनों के लिए है।

संस्कृत बोल सकने वाली लड़कियों के लिए यह मंत्र बहुत उपयोगी है, खास कर उस स्थिति में जब कि लड़की जिस व्यक्ति के साथ विवाह करना चाहती है वह व्यक्ति इसके लिये तैयार नहीं हो रहा हो। मंत्र है—

"ओम् ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयंकरि सकलस्थावरजगमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षय आकर्षय स्वाहा"

विनियोग—अस्य स्वयंवर कलामंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः जगती छन्दः देवी गौरीपुत्री स्वयंवरा देवता मम अभीष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

न्यास—ब्रह्मर्षये नमः शिरसि जगती छन्द से नमः मुखे देवी गौरीपुत्री स्वयवरा देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे।

करन्यास—ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै अंगुष्ठाभ्याम् नमः, ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै तर्जनीभ्याम् नमः, ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै मध्यमाभ्याम् नमः, ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै अनामिकाभ्याम् नमः, ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुष वश्य मोहिन्यै कनिष्ठिकाभ्याम् नमः, ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै करतलकरपृष्ठाभ्याम् नमः।

षड्गन्यास—ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः, ह्रीं त्रैलोक्य-

वश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा, ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै शिखायै वषट्, ह्रीं सर्वराजवश्य मोहिन्यै कवचाय हुम्, ह्रीं शवस्त्रीवश्य मोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट्।

इस प्रयोग को वे युवक भी कर सकते हैं जो चुने जाने के लिए कन्या-पक्ष के घर जाते हैं। इसका पुरश्चरण चार लाख जप पर माना जाता है किन्तु इससे कम होने पर भी कार्य सिद्धि संभव है।

यदि कोई व्यक्ति किसी कन्या विशेष से विवाह करना चाहे और इस विवाह मे लोकोचार विरुद्ध कोई बात न हो तथा लड़की न चाहती हो तो

"ओम् ह्रीं कामातुरे काममेखले विचोपिणी नीललोचने······वश्यं कुरु ह्रीं नमः"

इस मंत्र का विनियोग न्यासादि कुछ नही है जिस पर यह प्रयोग करना हो खाली स्थान मे उस व्यक्ति का नाम लेकर भोजन करते समय पहले ग्रास को सात बार अभिमंत्रित करके खा लेना चाहिए। वैसे यह प्रयोग बिना पुरश्चरण के सिद्ध है फिर भी दस हजार मंत्रों का पुनश्चरण कर लेना चाहिए। जब तक मंत्र जप करें तब तक मुँह में पान रखे और उसको चबाता हुआ इस मंत्र को जपता रहे। पूरा पुरश्चरण करने के बाद ऊपर लिखे अनुसार सात बार अभिमंत्रित करके भोज्य वस्तु खा लें। ऐसा करने पर सात या बारह दिन मे काम हो जाता है।

यह प्रयोग लड़कियां भी कर सकती हैं किन्तु दोनों स्थितियो में उनके परस्पर भेंट होने की स्थिति बननी चाहिए अन्यथा केवल कल्पना लोक में विचरण होने से क्या फल मिल सकता है? दोनों एक दूसरे को जानते हो तो बिना भेंट हुए भी काम चल सकता है।

विवाहार्थी स्त्री या पुरुष बढ़िया फिरोजा किसी को भेंट में दे तो संबंध चिरस्थायी बन जाते हैं। अकीक को शेरनी के बाल मे बांधने से भी प्रेम संबंधों में सफलता मिलती है, चन्द्रकान्त धारण करने से भी प्रेम संबंधो में सफलता मिला करती है। सार्डोनिक्स पहनने से जिसका विवाह नही होता हो उसके विवाह की आशा बन जाती है। फिरोजा, अकीक, चन्द्रकान्त चाहे व्यक्ति स्वयं पहने या उपहार में दे इन्हें धोकर ऊपर लिखे मन्त्र से अभिमंत्रित कर लेना इनको अधिक समर्थ बनाता है।

□□

हमारे उत्कृष्ट प्रकाशन

ज्योतिष

डा० नारायण दत्त श्रीमाली

भारतीय अंक ज्योतिष	12.00
ज्योतिष और काल निर्णय	5.00
रत्न ज्योतिष	10.00
फलित दर्पण	4.00
जन्म पत्रिका दर्पण	10.00
हस्त रेखा विज्ञान पंचांगुली साधना	10.00

गोविन्द शास्त्री

मंत्रसिद्धि रहस्य	10.00
यंत्र विज्ञान	12.00
तन्त्र विज्ञान	12.00
मन्त्र विज्ञान	12.00
आइये ज्योतिष सीखें I	5.00
आइये ज्योतिष सीखें II	5.00
आइये ज्योतिष सीखें III	5.00
भूतबाधा देहरक्षा	10.00

राकेश शास्त्री

पद्म पुराण	10.00
विवाह और ज्योतिष	10.00

सत्यवीर शास्त्री

बृहद हस्त रेखा विज्ञान
बृहद अंक ज्योतिष

राधाकृष्ण श्रीमाली

शनि और साढ़े साति

धार्मिक

शिरडी के साईंबाबा
गायत्री उपासना
काली उपासना
सूर्य उपासना (पुराण)
लक्ष्मी उपासना
गणेश उपासना
दुर्गा उपासना
शिव उपासना
हनुमान उपासना
सरस्वती उपासना
मारकण्डेय पुराण
हरिवंश पुराण
श्रीमद् भागवत पुराण
शिव पुराण
श्रीमद्देवी भागवत पुराण
श्री विष्णु पुराण

गरुड़ पुराण	10.00
भविष्य पुराण	10.00
श्रीमद्भगवद् गीता	10.00
अग्नि पुराण	10.00
स्कन्ध पुराण	10.00
व्रत और त्योहार	10.00
दुर्गा सप्तशती	12.00
सुन्दर काण्ड	10.00
सम्पूर्ण आरती संग्रह (रंगीन चित्रों सहित)	10.00
महाभारत	10.00
रामायण	10.00

खेल-कूद सीरीज

क्रिकेट कैसे खेलें	10.00
जूडो कराटे	12.00

योग-स्वास्थ्य सीरीज

योगासन और स्वास्थ्य	10.00
सम्पूर्ण योगासन	10.00
योगासन और रोग निवारण	10.00
योगासन और महिलाएं	10.00
घरेलू इलाज	10.00

महिलोपयोगी सीरीज

आचार चटनी और मुरब्बा	10.00
साधना आधुनिक पाक कला	
साधना होम टेलरिंग कोर्स	

ज्ञान-तत्व सीरीज

मनुस्मृति
हितोपदेश
पंचतत्र
लोक-व्यवहार, मैत्री कला और भाषण
विदुर नीति
सिंहासन बत्तीसी
चाणक्य सूत्र
चाणक्य नीति
वेताल कथाएं
भर्तृहरि शतक
जातक कथाएं
साधना अपटूडेट नॉलिज बुक

रवीन्द्रनाथ टैगोर

गीतांजलि

भगवान श्री रजनीश

आखो देखी सांच
अमृत द्वार
नये भारत की खोज
प्रभु मन्दिर के द्वार पर

तमसो मा ज्योतिर्गमय	10.00
प्रभु की पगडंडियां	10.00
जीवन गीत	10.00
सूली ऊपर सेज पिया की	10.00
ज्योतिष अद्वैत का विज्ञान	10.00
माटी कहे कुम्हार सूं	10.00
चल हंसा उस देश	10.00

स्वेट मार्डन

व्यक्तित्व का विकास	8.00
आप क्या नही कर सकते	8.00
भागो नही दुनिया को बदलो	8.00
उठो महान बनो	8.00
आगे बढ़ो	8.00
उन्नति कैसे करे	8.00
अपने को पहिचानो	8.00
अलौकिक शक्तियां	8.00
चिन्ता हटाओ सुख पाओ	8.00
जीना सीखो	8.00
सफलता की कुंजी	8.00
अरोग्य की कुंजी	8.00
करोड़पति कैसे बने	8.00
जो चाहें सो पायें	8.00
आत्मविश्वास का चमत्कार	8.00

यौन-विज्ञान सीरीज

महर्षि वात्स्यायन

बृहद कामसूत्र (सचित्र)	10.00

आचार्य चतुरसेन

नार-नारी	6.00

डा० आर० पी० सेठी

विवाहित आनन्द	6.00

डा० बी० एन० ग्रोवर

स्त्री-पुरुष	6.00

डा० श्रीमती नीलम

बर्थ कन्ट्रोल	8.00
मार्डन सैक्स गाईड	8.00
मैडिकल सैक्स गाईड	6.00

डा० मनीशकर शर्मा

स्त्री और सैक्स	10.00
सैक्स के 101 सवाल	10.00
सम्भोग शक्ति कैसे बढ़ायें	8.00
सैक्स सुहाग-रात से पहले	6.00

फिल्मी-सीरीज

सं० कर्ता अशोक ग्रोवर

रफी के दर्द भरे गीत	10.00

रफी के सदाबहार फिल्मी गीत	5.00
मुकेश के चुने हुए नग्मे	10.00
नई फिल्मों के डिस्को गीत	4.00
राष्ट्रीय भक्ति गीत	10.00
किशोर कुमार के सदाबहार गीत	10.00
लता के दर्द भरे गीत	10.00

हास्य कविता सीरीज

हुड़दंग का हुड़दंग	4.00

शायरी सीरीज

साजन पेशावरी

शेर ही शेर	5.00
कलाम-ए-गालिब	5.00
शेर-ओ-शायरी	6.00
कलाम-ए-जफर	5.00

अशोक ग्रोवर

बेहतरीन गजलें	6.00
जिगर की शायरी	5.00
रंगीन चुटकले	6.00

(जासूसी उपन्यास वर्ग)

ब्रेम स्टोकर

ड्रेकुला की वापसी	6.00
नरपिशाच ड्रेकुला	6.00

मारियो पूजो

गॉड फादर

ब्लादिमीर नाबोकोव

लोलिता

डी० एच० लारेंस

लेडी चैटर्ली का प्रेमी

प्रकाश भारती

बीस साल बाद
फरार मुजरिम
मर्डर सस्पेक्ट
मेरा इंसाफ
दौलत और ईमान
इन्तकाम
होटल में खून
जिन्दा लाश
जाली नोट
हत्यारा कौन
अनोखी औरत
खून का बदला
नकली चेहरा
तीसरा खून
छत्तीस घण्टे
डबल क्रास
सीक्रेट फाइल

साधना पॉकेट बुक्स
39-यू० ए०, बंग्लो रोड, दिल्ली-110007